मनोरंजन पुस्तकमाला—४

सम्पादक

श्यामसुंदर दास, बी० ए०

प्रकाशक

काशी नागरीप्रचारिणी सभा।

आदर्श हिंदू ।

पहला भाग ।

लेखक

मेहता लज्जा राम शर्म्मा ।

१९२२

भारतजीवन प्रेस, बनारस में मुद्रित ।

मूल्य १)

श्रीहरिः ।

कस्यचित्किमपि नो हरणीयं मर्म्मवाक्यमपि नोऽच्चरणीयम्
श्रीपतेः पदयुगं स्मरणीयं लीलया भवनिधिं तरणीयम् ।

भूमिका ।

—:*:—

भारतवर्ष के प्राचीन विद्वान् ग्रंथारंभ में मंगलाचरण किया करते थे, कार्य की निर्विघ्न समाप्ति के लिये इष्टदेव की प्रार्थना करते थे और पुस्तकरचना में अपनी अयोग्यता दिखला कर शिष्ट समुदाय से अपनी धृष्टता पर क्षमा माँगते थे। अब वे बातें भूमिका में बदल गईं। अब थोड़ों को छोड़कर न कहीं वह मंगलाचरण है, न वह वंदना है और न वह क्षमाप्रार्थना। अब है प्रायः देशोन्नति की डींगें, परोपकार का आभास और आत्मश्लाघा की झलक, किंतु मुझ जैसा पाँचवाँ सवार न 'मंगलाचरण' करने में समर्थ है और न मुझ में भूमिका लिखने ही की योग्यता है। परंतु आज कल के सभ्य समाज में जब भूमिका लिखने का एक तरह का फैशन है और जब इस बिना पोथी अधूरी समझी जाती है तब इस विषय में थोड़ा बहुत लिखना ही पड़ेगा।

जब बुरी और भली जैसी कुछ है—यह पोथी प्यारे पाठक

पठिकाओं के सामने है तब इसमें क्या है सो बतलाने की आवश्यकता ही क्या है ? हाँ ! इतना मैं कह सकता हूँ कि जिस उद्देश्य से मैंने अब तक और उपन्यास लिखे हैं उसी से यह "आदर्श हिंदू" भी लिखा है। इसमें तीर्थयात्रा के व्याज से, एक ब्राह्मणकुटुंब में सनातनधर्म का दिग्दर्शन, हिंदूपन का नमूना, आज कल की त्रुटियाँ, राजभक्ति का स्वरूप, परमेश्वर की भक्ति का आदर्श और अपने विचारों की बानगी प्रकाशित करने का प्रयत्न किया गया है। यदि इस पुस्तक में मैं आदर्श हिंदू का अच्छा खाका तैयार कर सका तो मेरा सौभाग्य और पाठकों की उदारता और यदि मैं फेल होगया तो मेरा यह प्रयत्न धरती में पड़े पड़े आकाशग्रहण करने के समान है ही। हाँ ! मेरी नम्र प्रार्थना है कि जो महानुभाव मेरी पुस्तकों को पसंद करते हैं वे इसे भी निज जन की जान अपनावें और जो हंसबुद्धि से समालोचना करनेवाले महाशय हैं वे इसकी त्रुटियाँ दिखलाकर मेरे लिये पथप्रदर्शक बनने की अनुग्रह करें।

श्रीमान् महाराव राजा सर रघुवीर सिंहजी साहब बहादुर जी. सी. आई. ई., जी. सी. वी. ओ., के. सी. एस. आई. बूँदीनरेश को मैं किन शब्दों में धन्यवाद दूँ ? मैं असमर्थ हूँ। इस पुस्तक का अकिञ्चन लेखक उन महानुभाव का चिराश्रित है, उनकी मुझ पर वर्द्धमती कृपा है और उन्हीं की सेवा में संवत् १९६९ में मुझे उनके साथ श्री जगदीश

पुरी की यात्रा का अलौकिक आनंद प्राप्त हुआ था। बस उसी यात्रा के अनुभव से इस पुस्तकरचना का बीजारोपण हुआ। उस बीज को प्रेमवारि से सींचकर भरतपुर राज्य के वकील मेरे प्रिय मित्र पंडित फतहसिंह जी ने फलित और पल्लवित करने के लिये समय समय पर सत्परामर्श से, तथा सामग्री देकर मेरी सहायता की। उनके लिये मेरा हार्दिक धन्यवाद है। बस यही संक्षेप से इस पोथी का इतिहास है।

परमेश्वर का लाख लाख धन्यवाद है कि उसकी अपार दया से हम भारतवासियों को ब्रिटिश गवर्मेंट की उदार छाया में निवास करके हजारों वर्षों के अनंतर सच्चे शांति सुख के अनुभव करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। इस असाधारण शांति और उदारता के जमाने में सरकार से भारतवासियों को जो बोलने और लिखने की अभूतपूर्व स्वतंत्रता प्राप्त है उसका सदुपयोग होना ही इस अकिंचन लेखक को इष्ट है। भगवान् सब को सुमति प्रदान करे और वे इस भूमिका के शीर्षक पर लिखे हुए श्लोक का अनुसरण करें यही नम्र प्रार्थना है।

आबू पहाड़
श्रावण कृष्ण ६ सोमवार
सं० १९७१ विक्रमीय

हिंदी का एक अकिंचन सेवक
लज्जाराम शर्म्मा

सूची ।

आदर्श हिंदू।

पहला भाग।

प्रकरण—१

दंपति की पहाड़ी सैर।

समुद्र की सतह से लगभग चार हजार फुट की ऊँचाई पर आबू का पहाड़ है। इस पर्वतमाला के दक्षिण पश्चिम की ओर वह गिरि शिखर है जिस पर जाने से सूर्यास्त के समय की छटा बहुत ही चित्ताकर्षक दिखाई देती है। इस स्थल को अंगरेज लोग "सनसेट पाइंट" अथवा पर्वत-राशि की वह चोटी जहां से सूर्यास्त का दृश्य दिखाई दे, कहते हैं। इस स्थान पर बैठ कर देखने में यह पर्वतमाला दर्शक को तीनों ओर से घेर लेती है। केवल सामने के एक विशद मैदान के सिवाय जिधर देखो उधर पर्वत ही पर्वत। इस शिखरसमूह में एक जगह चट्टानों पर चूने के दो ओंठ से बने हैं। पावस ऋतु न होने पर भी जिधर आँखें दौड़ाइए उधर हरियाली और जिधर नजर डालिए उधर गुलाब और चमेली के बन के बन। इनके सिवाय भगवान जाने कितने प्रकार के विचित्र वृक्षों से, नाना तरह के अद्भुत अद्भुत

पौधों से यह स्थल इतना घना हो गया है कि यदि रास्ता भूल जाने से कोई भय न खाता हो अथवा व्याघ्र भालुओं का किसी को डर न हो अथवा सर्प वृश्चिकों की कुछ परवाह न हो तो वह यहां के विशालाकार शिलाखंडों के नीचे महीनों तक रह सकता है। उसके लिये झरनों में जल की कमी नहीं और खाने के लिये कंद मूल फल भी मौजूद है। संसार के विरागी के लिये, घर छोड़ कर बनवासी होनेवाले के लिये, प्रकृति देवी ने, यदि उसको लोभ न हो, भय न हो और किसी प्रकार की आकांक्षा न हो, तो केवल अपना पेट पालने के लिये तृष्णा और क्षुधा तृप्त करके राम राम रटने के लिये, सब प्रकार की आवश्यकताएं पूर्ण कर दी हैं। जो साधु एकांत वास में भगवान का भजन करना चाहे उसे बस्ती में जाकर "माई! मुट्ठी भर चने" और "बाबा, मैं भूखा हूँ" की आवाज लगानी न पड़ेगी। आबू पहाड़ पर यह एक नहीं ऐसे अनेक स्थल हैं, एक से एक बढ़ कर हैं। मैंने एक शिखर के दृश्य का एक छोटा सा नमूना दिखलाया है।

यों तो आबू के पहाड़ पर पहले ही अधिक बस्ती नहीं। थोड़ी बस्ती होने से सायंकाल का दृश्य देखने के लिये यदि इस जगह कोई आय भी तो उनकी संख्या कितनी! किंतु आज पोलो के मैदान में किसी तरह का तमाशा है। प्रकृति का अप्रतिम, अलौकिक और सच्चा तमाशा देखने, देख कर परमेश्वर की परमेश्वरता का ज्वलंत उदाहरण पाकर उप-

दर्शन ग्रहण करने के बदले झूठी दुनिया के झूठे और बनावटी तमाशे देखने के लिये इस नगर के स्त्री पुरुष और बालक दौड़े जा रहे हैं। जाने में उनका दोष नहीं। मनुष्य जाति बनावट पसंद है। यदि बनावट पसंद न होती, यदि प्रकृति के अलौकिक सौंदर्य देखने के लिये भगवान ने उसे आँखें दी होतीं, यदि सितार की "टुनुन टुनुन" और तबले की "धप धप" सुनने के बदले वह ईश्वर की इस अनंत सृष्टि में ऐसी जगह बैठ कर अपने अपने घोंसले में जाकर बसेरा लेनेवाली चिड़ियों का चक चक सुनने की इच्छा करती तो शायद संसार के अनंत आडंबर का षोड़-शांश भी न रहता। फिर उसे किसी की खुशामद न करनी पड़ती, किसी की झिड़कियां न खानी पड़तीं और न काम क्रोध लोभ और मोह जैसे प्रबल शत्रु, दुर्दमनीय रिपु उसका बाल बांका करने पाते।

अस्तु मेले तमाशे ने इस जनशून्य पर्वतखंड को आज और भी जनशून्य कर दिया है। आज यहां दो जनों के सिवाय कहीं कोई आदमी दिखलाई नहीं देता। चाहे कोई दीख न पड़े परंतु इन दोनों के अंत-करण में न मालूम कुछ भय है अथवा शंका है क्योंकि ये दोनों इन कुर्सियों को छोड़कर इस एकांत स्थान में अधिक एकांतता पाने के लिये अलग ही एक सूनी चट्टान पर जा बैठे हैं। और शंका कोई हो तो हो क्यों कि ये दोनों चोर नहीं डकैत नहीं और खूनी नहीं जो किसी से डर कर एकांत ग्रहण करें क्योंकि जब "सुख ही अंतः-

करण का दर्पण है" तब इनके चेहरे मोहरे से सज्जनता के सिवाय दुर्जनता का लेश भी नहीं पाया जाता । यदि और कुछ भी न हो तो इन दोनों में एक को लज्जा ने अवश्य घेर रक्खा है। क्योंकि वह बहुत ही चोकन्नी है, पशु पक्षियों की आने जाने से कहीं पर कुछ पत्ता खटकने की आहट आते ही अपने प्राण प्यारे की मधुर ध्वनि सुनकर अपने अंतःकरण को तृप्त करने के बदले वह अपने कान के हरकारों को वहीं भेजकर तुरंत ही लज्जा के मारे सिकुड़ती हुई सोचती है कि कहीं हमारी बात को कोई सुनता तो नहीं है। इस से शायद कोई यह समझ बैठे कि यह रमणी जारिणी है और पराये प्यारे को अपना प्यारा बनाने के कारण ही शर्माती है। ऐसा समझने में समझनेवाले का कोई दोष भी नहीं है क्योंकि आज कल व्यभिचार का जमाना है, किंतु नहीं! यह जारिणी नहीं और उसका प्रियतम ही उसका सच्चा हृदयेश्वर है, उस का स्वामी है और वही स्वामी है जिसने पांच पंचों में बैठ कर सूर्य चंद्रमा की साक्षी से, ध्रुव तारे के दर्शन करके, अपने अटल संयोग की प्रतिज्ञा के साथ एक के दुःख में दूसरे के दुखी होने और एक के सुख से दूसरे के सुखी होने का वादा करके, जन्म जन्मांतर तक मरने के बाद भी साथ न छोड़ने के प्रण के साथ पाणिग्रहण किया था। जब ऐसा ही है तब इतनी शंका क्यों? दंपति के एकांतस्थल में प्रेमसंभाषण के समय इतनी लज्जा का क्या काम? किंतु हां! काम है और जब पर पुरुष

से बातचीत करने के समय एक व्यभिचारिणी को जो लज्जा होती है वह लोक लाज के भय से, पकड़ी जाने के संदेह से और इस लिये कृत्रिम-झूठी, और अपना पाप छिपाने के लिये, तब यह लज्जा स्वाभाविक लज्जा है, यह वही लज्जा है जो स्त्रियों का सच्चा आभूषण है। संसार में आदर्श दंपति के सच्चे प्रेम का सच्चे सुख का जिनको अनुभव करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है वे अवश्य स्वीकार करेंगे कि ऐसी लज्जा नित्य नया आनंद देने वाली है। इसमें अलौकिक सुख है।

उस जगह इन दंपति के सिवाय कोई तीसरा व्यक्ति नहीं है, और इस कारण इन दोनों का प्रेम-संभाषण जी खोलकर हो रहा है। शायद ऐसे अवसर पर किसी भले आदमी को जाकर उनके सुख को लातों से रौंदना, आनंद को किरकिरा कर देना उचित भी नहीं है, और इसी कारण इन दोनों के प्रेमसंभाषण का उतना अंश छोड़ कर यहां उन्हीं बातों को दिखला देना मैं उचित समझता हूं जिनका इस उपन्यास से संबंध है। मुझे आशा है कि ऐसा करने पर यह जोड़ी मुझपर नाराज न होगी और पाठक पाठिकाओं का भी थोड़ा बहुत मनोरंजन अवश्य होगा। खैर! कुछ भी हो पत्नी ने कहा—

"क्यों जी तुम मुझे इस जगह क्यों ले आए? मैं तो शर्म के मारे मरी जाती हूं। चलो, घर चलो। जल्दी चलो। कहीं हमको कोई देख न ले।" इतना कहकर पति के पास से हटती हुई, घूंघट से अपना मुंह छिपाकर हाथ के इशारे से

दूर की कोई चीज दिखाती हुई-"है हैं! वह आगया! अब क्या होगा?"

"होगा क्या? कोई भूत है जो हमें खा जायगा? वह भी एक चट्टान है जो सायंकाल की झुरमुट में वृक्षों की आड़ से आदमी सी दिखलाई देती है। और यदि आदमी भी हो तो डर क्या है? क्या तू किसी और की गोदी में है जो इतनी शर्माती है?"

"आग लगे और को! भाड़ में जाय और! परंतु क्या ऐसी खुली जगह में तुम्हारे पास बैठ कर बातें करने में शोभा है? भले घर की भामिनी का अपने मालिक से भी समय पर अपने कमरे ही में बातचीत करना अच्छा है। ऐसे बीबी को बगल में दबाकर सैर करने में लाज ही है। मैं तुम्हारे झाँसे में आ गई। बड़ी चूक हुई। अब कभी तुम्हारे साथ ऐसे हवा खाने नहीं आऊंगी।"

"न आवेगी तो यों ही घर में गलगल कर मर जायगी। यह आबू है। यहां परिश्रम करने और बाहर की हवा खाने ही से जीवन है, मेम साहबों को देख वे कैसे सुख से विचरती हैं। कुलवधू की लज्जा जैसी तुझमें है वैसी उनमें भी है किंतु देख बाहर की हवा खाने और परिश्रम करने से उनकी संतान कैसी हृष्ट पुष्ट और बलिष्ट होती है।"

"उनका सुख उन्हें ही मुबारिक रहे। हम पर्दे में रहने वालियों को ऐसा सुख नहीं चाहिए। हम अपने घर के धंदे ही

में मग्न हैं। ऐसे खुले मुंह बाहर फिरना, अपना गोरा गोरा मुख औरों को दिखलाते फिरना और पर पुरुषों से हँस हँस कर बात चीत करना किस काम का। ऐसे सुख से तो घर में झुर झुर कर मर जाना अच्छा, परंतु हाय! संतान। संतान का नाम लेकर तुमने मेरा हृदय राख कर डाला। हाय! संतान के बिना हृदय सूना है, गोद सूनी है, घर सूना है और संसार सूना है।"

"अरी बावली, कहां का चर्खा ले बैठी। यहां दो घड़ी सुख से बिताने आए थे तिसमें भी तेरी हाय हाय न मिटी। देख सामने से सूर्यनारायण के अस्त होने की शोभा! अरी पगली तू तो रो उठी। रोती क्यों है! ओहो! बड़े बड़े आंसू? आंसू बहा कर अंगिया तक भिगो डाली। ऐंहैं! अपने गोरे गुलाबी गालों पर आंसुओं का ज्वारभाठा! ओहो! समुद्र उलटा चला आ रहा है। बस बस! बहुत हो गई।" अपनी जेब से रूमाल निकाल कर प्यारी के आँसू पोंछते हुए कुछ गुदगुदा कर "बस बस! बहुत हुई! अब जरा अस्ताचलचूड़ावलंबी भगवान भुवनभास्कर के भी दर्शन कर लीजिए।"

"बस बस, रहने दो अपनी दिल्लगी! यह रोने के समय हँसना किस काम का? मुझे नहीं चाहिए तुम्हारा सूर्यास्त! मुझे तो अपने घर में सूर्य का उदय दिखलाओ। उदय!"

"हा हा! (फिर कुछ चुटकी सी लेते हुए) देखो स्त्रियों का साहित्य! लोग कहते हैं कि हिंदुओं की स्त्रियाँ अपढ़ होती हैं किंतु अपढ़ होने पर भी ऐसा साहित्य।"

"बस बस ! बहुत हो गई। क्षमा कीजिए। मुझे नहीं चाहिए तुम्हारा सूर्यास्त।"

"अरे जो उदय होता है वह अस्त भी होता है। संसार का यह नियम ही है। संसार के घटनाचक्रने सूर्यनारायण तक को नहीं छोड़ा है।"

"नहीं नहीं ! ऐसा न कहो। यह कहो कि जो अस्त होता है उसका सूर्य भगवान की तरह उदय भी होता है।"

"हाँ हाँ ! सत्य है। अच्छी लाजिक है। अच्छा अभी अस्त तो देख ले फिर भगवान कल उदय भी दिखावेगा।"

"हाँ ! अब आए कुछ ठिकाने। बोलो मैं तेरा चेरा'। जो हारे हो तो कह दो।"

"सचमुच ही मैं जीता, नहीं नहीं तू जीती। स्त्री एक बार दूसरे की दासी बनकर जन्मभर के लिये उसे अपना दास बना लेती है और तब मैं तेरा दास ही......"

बस इतना कहते ही पत्नी ने पति का मुख पकड़ लिया। "बस बस आगे नहीं। प्राणनाथ आगे नहीं" कह कर ज्योंही उसने हाथ जोड़ कर मालिक से क्षमा माँगी तब अवसर साध कर पति ने—"ठहरा तब मैं सदा ही तुझ से हारा" कहकर अपना वाक्य पूरा किया और प्यारी ने दोनों कानों में अँगुलियाँ डालकर यह बात सुनी अनसुनी कर दी। थोड़ी देर तक दोनों की आँखों ही आँखों से न मालूम क्या क्या बातें हुईं—सो दोनों के मन जानें अथवा घट घट व्यापी परमात्मा, किंतु अब सुंदरी

एकाएक हाथ जोड़कर, पति परमात्मा के चरण कमलों में अपना सिर रखते हुए गिड़गिड़ा कर बोली—

"नाथ, अपराध हुआ। क्षमा करो। इस दासी की चूक हुई।"

"नहीं नहीं चूक का (दोनों हाथ पकड़ कर अपने हाथों से दबाते हुए) क्या काम ?"

"बस ! बस !! अब अधिक नहीं। अजी यह क्या करते हो। कहाँ तक मसकोगे ? मेरी कलाइयाँ टूटी जाती हैं"।

जिस समय इन दोनों में इस तरह आमोद प्रमोद की बातें हो रही थीं एकाएक इनकी दृष्टि सूर्यनारायण के लाल लाल थाली जैसे बिंब की ओर गई। उस समय का सूर्य प्रकाशहीन चंद्रमा का सा था। धीरे धीरे दिन भर की कठिन तपस्या के अनंतर भगवती वसुंधरा की गोद में छिपने के लिये आ रहा था। "बस वह छिपा। वह डूबा ! अभी आधा ! नहीं अब पूरा डूब गया ! छिप गया।" की आवाज दोनों ही के मुख कमलों में से निकल कर दोनों ही के कर्णकुहरों में प्रवेश कर गई। तब पति ने पूछा—

"इससे तैंने क्या मतलब निकाला ?"

"सुख के अनंतर दुःख और दुःख के अनंतर सुख होता है। जब दिन भर में सूर्य भगवान की तीन अवस्थाएं हो जाती हैं तब बिचारा आदमी किस गिनती में ? परंतु मैं इस नतीजे को तब ही सच्चा मानूँगी जब मुझे भी दुःख के बाद सुख हो"।

"क्यों फिर वही बात" ।

"हाँ जी वही । जैसे इस जगह तीन ओर हरियाली और सामने का मैदान सूखा पड़ा है और जलशून्य नदी और जन-शून्य पृथ्वी पर सूर्यनारायण के चले जाने से अँधेरी रात अपनी अँधेरी चादर बिछा रही है वैसे ही मेरा हाल है। भगवान एक भी दे दे तो सब कुछ है, नहीं तो कुछ नहीं। यह सूर्य मेरे लिये जलता हुआ अंगारा, ये वृक्ष मेरे लिये करीर और यह मैदान मारवाड़ का रेगिस्तान।"

"सब परमेश्वर के हाथ है । वह चाहे तो राई से पर्वत कर दे"।

"परमेश्वर भी उद्योग से देता है"।

"उद्योग तो हम करते ही हैं"।

"नहीं नहीं ! मजाक मत करो । आज मकान पर एक महात्मा आए थे"।

"अच्छा, इसका विचार घर चल कर करेंगे। रात्रि में बघेरे का डर है"।

बघेरे का नाम सुनते ही प्रियंवदा डर के मारे काँप कर प्रियानाथ से चिपट गई। पति उसे हाथ पकड़ कर घबराहट मिटाते हुए घर लाए।

प्रकरण—२

पुत्रकामना।

"महात्मा कैसे थे ? बूढ़े या जवान" ?

उमर तो उनकी कोई पचीस वर्ष की मालूम होती थी परंतु बतलाई उन्होंने एक सौ तेरासी वर्ष को। वह जब मौज आती है तब चोला बदल लिया करते हैं" ?

"हां तो जवान ? (हँस कर) जवान ही महात्मा अच्छा। उससे अवश्य......"

"यह हर बार की दिल्लगी अच्छी नहीं। (तिउरियां बदल कर) चूल्हे में जाय उसकी जवानी। अब मैं कभी नाम भी न लूंगी। भगवान मेरा सुहाग अमर रक्खे। मुझे नहीं चाहिए बेटा बेटी। उस बिरियां मैं अकेली भी तो नहीं थी"।

"अरे नाराज हो गई ! नाराज न हो प्यारी ! जरा सी दिल्लगी में इतना कोप ? अच्छा कहो कहो ! उन्होंने क्या चमत्कार बतलाया" ?

"बस बस ! रहने दो उनके चमत्कार ! जब तुम्हें इतनी सी बात से ऐसा बहम हो गया तो मुझे भी ग़रज़ ही क्या है ? बेटा होने से नाम भी तो तुम्हारा चलेगा"।

"नहीं नहीं ! बहम बिलकुल नहीं ! संदेह का लेश मात्र नहीं ! भला तुम जैसी सुशीला और बहम ? परंतु बेटा

बेटी होने की तेरी हाय हाय खोटी है । नाम मनुष्य के सुकार्यों से होता है। भगवान रामचंद्र का नाम उनके अलौकिक गुणों से है । राजा हरिश्चंद्र को उनके सत्यवादीपन से लोग जानते हैं। उनका लव कुश के और इनका रोहिताश्व के कारण से नहीं"।

"राजपुताने के आदमी कहते हैं कि "नाम या तो पूतड़ां अथवा भीतड़ां"।

"उनका कहना भी एक अंश में ठीक है । यह कहावत साधारण आदमियों के लिये नहीं, राजाओं के लिये है क्योंकि उन्हें राज्य करना है। हमारे पास न तो कोई राज्य है और न कोई खजाना"।

"और बुढ़ापे में सेवा कौन करेगा"।

"धन होगा तो हजार आदमी खुशामद करने वाले मिल जांयगे और कौड़ी न होगी तो कोई पूछेगा भी नहीं। आज कल दुनियां में बहुधा ऐसे कुपूत होने लगे हैं कि जिन से सुख के बदले दुःख होता है, जो नाना प्रकार के कुकर्म करके बड़ों का नाम डुबाते हैं"।

"उस दिन वह महात्मा—नहीं नहीं महात्मा का तो अब नाम भी लेना अच्छा नहीं । शायद वह ठग ही हो परंतु उस दिन चाचाजी तो कहते थे, आपसे ही कहते थे कि बेटे के हाथ से पिंडदान हुए बिना आदमी की मोक्ष ही नहीं होती" ।

"केवल इस बात के कहने ही से हम महात्मा को ठग नहीं कह सकते क्योंकि दोनों ही का कहा सत्य है। शास्त्र में ऐसा ही लेख है और सो भी इसलिये है कि इस लोभ से परमेश्वर की सृष्टि बढ़े क्योंकि मोक्ष होने का एक यही साधन नहीं है। बड़े बड़े साधन हैं और मैं मानता हूं कि सब से बढ़ कर साधन चार हैं। एक परोपकार, दूसरा किसी को कष्ट न पहुँचाना, तीसरा सच्चा व्यवहार और चौथा परमेश्वर की अनन्य भक्ति।"

"और महात्माओं का आशीर्वाद ?"

"हां! यह भी है परंतु आज कल प्रथम तो महात्माओं का मिलना ही असंभव है क्योंकि उनमें दुराचारी, ठग, व्यभिचारी, चोर और उचक्के बहुत होते हैं। भेड़ की खाल में भेड़िया होता है। इसी कारण गोस्वामी तुलसीदास जी ने रामायण के उत्तर कांड में इनका अच्छा खाका खींचा है और जो कोई मिल भी जाय तो ऐसे ही उपदेश देगा।"

"ठीक है। उन महात्माजी ने भी यही बात कही थी। इस के सिवाय इतना अधिक कहा था कि स्त्री की पति के सिवाय कोई गति नहीं और पुरुष को अपनी पत्नी के सिवाय और स्त्रियों को अपनी मां बहन समझना चाहिए। उन्होंने व्यभिचार की बहुत निंदा की थी।"

"तब उन्होंने साधन क्या बतलाया? आदमी तो भले मालूम होते हैं।"

"साधन कुछ विचित्र सा है। साधने योग्य नहीं। कहते थे कि योग साधन करने के लिये मैं प्रातःकाल ही प्राणायाम चढ़ाता हूं और उसे छोड़ता हूं रात के नौ बजे। उस समय मेरी कुटी पर तू आ जावे तो मैं आशीर्वाद दे सकता हूं और एक मंत्र भी बतलाऊंगा। उसके जप करने से अवश्य संतान होगी। अथवा काशी जाकर हमारे गुरु के दर्शन करने से।"

"तब वह अवश्य भेड़ की खाल में भेड़िया है। उसने तुम्हें ठगने के लिये अच्छे अच्छे उपदेशों का जाल बिछाया है।"

"नहीं! वह लालची तो नहीं दिखलाई देता। मैं उसे एक रुपया देती थी परंतु दो मुट्ठी चनों के सिवाय उसने कुछ नहीं लिया। लोभी होता तो रुपया क्यों छोड़ता?"

"तू भोली है। हिंदू स्त्रियां बहुत भोली होती हैं। ऐसे ठगों के फरेब में आ जाती हैं। इतने लिखने पढ़ने पर भी तेरा भोलापन नहीं गया। प्रथम तो उसने तुमसे बहुत रुपया पाने की आशा में दूकानदारी फैलाई है और जो सचमुच उसे रुपए पैसे का लोभ न हो तो वह तेरी लाज लूटना चाहता है।"

"नहीं! कदापि नहीं! हम औरतें आदमी की आँख पहचान लेती हैं। यदि इनकी इच्छा ऐसी होती तो मुझे मालूम हो जाता।"

"भला तो आप इस विद्या में उस्ताद हैं! हम आप को आज से ही उस्ताद जी कहेंगे। अच्छा फरमाइए तो आपने यह किस से सीखी थी?"

"बस बस ! रहने दो ! तुम्हारा मज़ाक ! सीखने किस भड़ुवे से गई थी ? तुम ही मेरे गुरु ! काम शास्त्र तुम से ही तो सीखा है । बुद्धिमान् स्त्रियों में पातिव्रत का बल यदि बढ़ा हुआ हो तो कम से कम इस विषय में वे दूसरे का मन अवश्य टटोल लेती हैं ।"

"कदाचित हो ! परंतु मेरा मन तो ऐसी बातों को नहीं मानता । शायद धोखा हो जाय ।"

"धोखा नहीं हो सकता । मैं किसी दिन साबित कर दूंगी । और यदि वह बुरा भी निकले तो मेरा क्या कर सकता है । उस मुए की मजाल क्या ? उसकी क्या किसी की मजाल नहीं जो स्त्री की इच्छा बिना उसकी लाज लूट सके । आपने "आदर्श दंपति" में मेरी दादी का और "सुशीला विधवा" में मेरी भुआ का हाल पढ़ा होगा । और फिर आप भी तो साथ रहेंगे । मैं आप के बिना अकेली थोड़े ही जा सकती हूं । जब भगवान ने मुझे आप का अर्धांग दिया है तब वह जन्म जन्मांतर तक इसको बनाए रक्खे ।"

"अच्छा देखा जायगा । कभी इन बातों की परीक्षा लेंगे ।"

"परीक्षा लेकर सनद भी दोगे ? कौन सनद ?"

"प्रिया, प्रेयसी, प्रेमिका अथवा तू कहे तो बी. ए., एम्. ए. की ?

'पहली तीनों तो मेरी हैं लेकिन एम्. ए. की भी । क्योंकि पहले मैं ब्राइड और आप ब्राइड (दुलहिन) के ग्रूम (साईस)

थे अब मैं मास्टर (मालिक) भी बन गई ! अहा ! मैं मालिक किस की ?"

"हमारी ?"

"नहीं ! आप की तो दासी । आप मालिक और मैं मालिकिन !"

अच्छा !"

"अच्छा नहीं ! अकेले घर में पड़े पड़े मेरा जी नहीं लगता है । आप इधर उधर घूम कर सैर कर आते हैं और मैं घर में पड़ी पड़ी सड़ा करती हूं। तीर्थयात्रा के लिये आपने जो प्रण किया था उसे याद करो, जिसमें धर्म का धर्म और सैर की सैर हो। आप को गया श्राद्ध भी करना है । परमेश्वर करे पूर्व पुरुषों के पुण्य से ही हमारी मनोकामना पूर्ण हो। आप का कर्तव्य भी है और आप कहा करते हैं कि-"मैं कर्तव्य-दास हूं।"

"हां ठीक है ! परंतु जो मन चंगा तो कठौती में गंगा। आज कल पहले की सी तीर्थयात्रा नहीं रही। जगह जगह कष्ट, जगह जगह ठग उचक्के उठाईगीरे और अत्याचार, अनाचार है।"

यदि ऐसा भी हो तो क्या इन्हें सुधारने का आप को प्रयत्न न करना चाहिए ?

"प्रयत्न अवश्य करना चाहिए। चलेंगे और शीघ्रही चलेंगे। सैर भी होगी और पितृऋण से भी मुक्ति । संसार

यें यदि श्राद्धादि न होते तो माता पिता के चिर वियोग के बाद उनके असंख्य उपकारों का बदला ही क्या था ? श्राद्धों से परलोक के पुण्य के सिवाय उनकी याद आती है, उनका अनुकरण करने का, उनके उपदेश पर चलने का स्मरण होता है और सब "पितृस्वरूपी जनार्दनं प्रीयताम्"।

"हां ! यही बात है और फिर तलाश करने पर यदि मिल जांय तो महात्माओं के दर्शन, तीर्थों का स्नान और भगवान की भक्ति।"

श्रीमती प्रियंवदा और पंडित प्रियानाथ के परस्पर प्रेम संभाषण के साथ इस तरह तीर्थयात्रा का मंतव्य स्थिर हुआ। किस किस तीर्थ में और कब जाना तथा किसे साथ ले जाना और किसे घर की रखवाली पर छोड़ जाना इन सब बातों का ठहराव हो गया। पंडित जी अंगरेजी, हिंदी और संस्कृत साहित्य के साथ गुजराती, मराठी और उर्दू के सिवाय ज्योतिष और कर्मकांड से भी अच्छी जानकारी रखते थे। इस कारण उन्हें यात्रा के लिये मुहूर्त निकलवाने में और यात्रारंभ के लिये घृतश्राद्ध करने में किसी पंडित की सहायता की आवश्यकता न थी किंतु जब श्रीमती की यह राय थी कि जो कुछ करना चाहिए सो सब ब्राह्मण की आज्ञा लेकर, तब इन्हें नगर के विद्यापति पंडित को बुलवाना पड़ा। पंडित जी आए और अपना पोथी पत्रा लेकर आए परंतु ज्योतिष पढ़ने के नाम पर इनके लिये काला अक्षर भैंस बराबर था।

गँवारों में बैठकर यह अवश्य बड़ी बड़ी डींगें हांका करते थे किंतु आते ही प्रियानाथ महाशय को देख कर इन्हें लकवा मार गया। यदि इन्हें घर पर ही मालूम हो जाता कि एक विद्वान का सामना करना है तो शायद बुखार का बहाना कर के पड़े रहते परंतु जो आदमी इन्हें बुलाने गया था उसने इन्हें खूब मोदक और भरपूर दक्षिणा मिलने का झांसा दे दिया था और इस लिये अपनी घरवाली से वे कह आए थे कि-"आज हमारे लिये कुछ न बनाना? चूल्हा जलाने ही की क्या आवश्यकता है? हो सकेगा तो तेरे लिये लेते आवेंगे, नहीं तो रूखी सूखी खाकर गुजर कर लेना।" केवल इतना ही क्यों? इन्हें आशा थी कि अच्छे बूरे के बढ़िया और गहरे घी के मोदक मिलेंगे। इसलिये चलती बार अपनी घरवाली को ताकीद कर आए थे कि "भंग बढ़िया बनाकर तैयार रखना।" क्योंकि वह मानते थे कि-"आज मोदकों से संग्राम है।"

आकर यह बैठे, और इन्होंने अँगुलियों पर अंगूठा डालकर कभी मीन, मेष, वृष, और कभी अश्विनी, भरणी, कृत्तिका पचासों बार गिन डाले। इन्होंने "शीघ्रबोध" के अटरम शटरम दो चार श्लोक भी बोले परंतु मुहूर्त बनाने का हियाव न हुआ। अंत में इन्होंने साहस बटोर कर कहा—

"नवमी शनिवार!"

उस दिन पूर्व में दिशाशूल और इन्हें उधर ही जाना। मृत्यु योग्य और चंद्रमा चौथा था। सुन कर पंडित प्रियानाथ मुस-कराए। "अच्छा खासा मृत्यु योग है। दोनों में से एक भी जीता नहीं लौटेगा।" इतना कहकर अपनी गृहिणी की ओर देखते हुए हँस कर इन्होंने पूछा—"पंडित जी कुछ पढ़े भी हो?"—उत्तर में घबड़ाई हुई जबान से "यों ही पेट भर लेता हूं" कहते हुए उन्होंने अपनी पोथी बगल में दबाई और पेट में दर्द का बहाना करके वे चट नौ दो ग्यारह हुए। उनके चले जाने बाद प्रिया-नाथ जी ने अपना सिर ठोका और "इन्हीं मूर्खों की बदौलत हिंदू धर्म नष्ट भ्रष्ट हुआ जा रहा है" कहते हुए पत्रा देखकर अपनी यात्रा का दिन स्थिर किया और घृतश्राद्ध भी स्वदेश आकर करना निश्चय किया। और किया सो हाल में निश्चय करके कोई साल भर बाद क्योंकि उनकी छुट्टी झमेले में पड़ जाने से उन्हें उस समय विचार त्यागना पड़ा था।

प्रकरण—२

बूढ़े का गृहराज्य ।

ज्येष्ठ का महीना है । ठीक दुपहरी का समय है । लू बहुत जोर शोर से चल रही है । एक पीपल के पेड़ के सिवाय कहीं छाय का नाम नहीं । कौवे, चील्ह, चिड़ियाँ, तोते, मोर और कोयलों को उस पेड़ के सिवाय कहीं सिर मारने की जगह नहीं । लू कहती है कि–"जैसी आज चलूगी वैसी फिर कभी नहीं । जितना जोर मुझे दिखलाना है सब आज ही ।" इधर सूर्य की प्रखर किरणों से शरीर झुलसा जा रहा है । तो उधर लू के मारे मन व्याकुल हुआ जा रहा है । ऐसी लू में, कड़ी धूप में काम करते करते, हल खेंचते खेंचते बिचारे गौ के जाये भी घबड़ा उठे हैं । घबड़ाने में उनका दोष थोड़े ही है । प्रातः काल के चार बजे से उनके कंधों पर जूड़ी रक्खी गई है । एक, दो, चार नहीं पूरे आठ घंटे हो गए । परिश्रम की भी कोई हद्द है । केवल जिनकी बदौलत मनुष्य जाति का पेट भरता है उनकी यह दशा ! खाने के लिये थोड़ा सा भूसा देकर इतना कठोर परिश्रम ! आज लू लगकर, अथवा मेहनत से थक कर एक दो बैल मर जांय–मर मिटें तो क्या आश्चर्य ? मेहनत करते करते हार छूटे । कोई उनमें से घबड़ाकर गिरने लगा और कोई यदि गिरा नहीं तो उसने जूड़ा डाल दिया ।

हल चलाने वालों की इनसे बढ़कर दुर्दशा है। थकावट से, लू से और धूप की तेजी से सब के सब घबड़ा उठे हैं। कोई कहता है—"आज मरे।" और कोई कहता है—"आज एक न एक ज़रूर मरेगा।" किसी ने कहा—"आज यह डोकरा एकाध के प्राण लिये बिना नहीं छोड़ेगा"—तो कोई झट बोल उठा—"आज तो अभी तक कोई रोटी लेकर भी नहीं आया।"

जिस समय इन लोगों में इस तरह की बातें हो रही हैं उस समय पीपल के नीचे एक पिचहत्तर वर्ष का बूढ़ा टूटी सी चारपाई पर बैठा हुआ हुक्का गुड़गुड़ा रहा है। बुढ़ापे ने जोर देकर उसके मुंह से सब दाँत छीन लिए हैं, उसके सिर और दाढ़ी मोंछ के क्या—भौंहों तक के बाल सन से सफेद हो गए हैं। जवानी जब इस बूढ़े से नाराज होकर जाने लगी तो चलते चलते गुस्से में आकर एक लात इस जोर से मार गई कि जिससे बूढ़े की कमर झुक कर दुहरी हो गई। डाढ़ के दांतों के गिर जाने से इसके पोपले मुँह के गाल पिचक कर जैसे भीतर जा चिपके हैं वैसे ही आँखें भी हिये की आँखों से मुलाकात करने के लिये भीतर की ओर घुसी जा रही हैं। इस तरह शरीर की हर एक दशा से इसका बुढ़ापा झलकता है परंतु फिर भी "साठा सो पाठा।" यह आज कल के जवानों से किसी तरह कम नहीं है। खाने के लिये जब थाली सामने आती है तब अस्सी भर के तोल से डेढ़ सेर आटा चाहिए और काम करने के लिये यदि खड़ा हो जाय तो जवानों को

मात कर दे। अपना बल दिखलाने के लिये अब कभी किसी का हाथ पकड़ लेता है तो मानों फौलाद के हाथ हैं और क्रोध में आकर यदि किसी बेटे पोते के एकाध हलकी सी थप्पड़ मार दे तो नाक से खून निकल पड़े। यदि इससे कोई मरने का नाम ले दे ती उसी समय ठंढी सांस खैंच कर कहता है कि मरना तो आगे पीछे है ही। आज नहीं कल और कल नहीं परसों। मेरी बराबर के पेड़ तक नहीं रहे और जब सब तरह का सुख है तो मरना ही अच्छा है क्योंकि कल की कुछ खबर नहीं। भगवान अब जल्दी ही समेट ले पर एक ही बात का खटका है। पचास पचास वर्ष के लड़के हो जाने पर भी इस घर को सँभालनेवाला कोई नहीं है। अभी तक सब एक रस्सी में बँधे हुए हैं, इसी सबब से बस्ती भर में धाक है। मेरे मरते ही सब अलग अलग होकर आपस में लड़ मरेंगे।

इस बूढ़े का कहना भी ठीक है। इसकी स्त्री मौजुद, आठ बेटे और सत्रह पोते मौजूद। आठ बहुएँ और नौ पतोहुएँ मौजूद। चार पांच लड़कियां, पांच सात पोतियां और दो तीन परपोते, परपोती, छः सात दौहित्र, दौहित्री। इस तरह कम से कम पचास आदमी एक चूल्हे पर रोटी खानेवाले हैं। कभी किसी की शादी है तो कभी किसी का गौना। साल भर में दो चार साहे भी होते हैं और भात देने के भी अवसर। बेटों के, बहुओं के, पोतों के और पतोहुओं के और

छोटे मोटे लड़के लड़कियों के काम अलग अलग बँटे हुए हैं। सब अपने अपने काम पर मुस्तैद। किसी की ताव नहीं जो बूढ़े के हुक्म में चूं कर सके। घर के काम की निगरानी और माला फेर कर "राम राम" जपने के सिवाय इसे कुछ काम नहीं परंतु फिर भी घरवालों के आपस के मुकद्मे फैसल करने में और गाँववालों को अपने अपने काम की सलाह देने में इसका बहुत समय निकल जाता है और इसलिये फुरसत न मिलने की इसे शिकायत भी बनी ही रहती है। बस्ती भर में इसकी अवश्य धाक है। गाँव के आदमी बड़े बड़े काम इससे पूछ कर करते हैं और यह सलाह भी नेक ही देता है। जो कोई भूखा, प्यासा इसके द्वार पर आ जाय, जो कोई दुखी दरिद्री इसके पास आ जाय उसकी हर प्रकार से यह खातिर करता है। जहाँ तक इससे बन सकता है गाँव वालों के छोटे मोटे झगड़े जोर लगाकर आपस में निपटा देता है और उन्हें इस कारण पुलिस के चंगुल से बचाता है, पटवारी के हाथ से उनकी रक्षा करता है। परोपकारी ऊँचे दरजे का है। जरा से कष्ट की इसे खबर लगी कि यह उसके पास रात के बारह बजे तक मौजूद। यद्यपि यह वैद्य नहीं, वैद्य का जाया नहीं परंतु देहाती इलाजों से ऐसे ही लोगों की सहायता करता है और इन्हीं कारणों से गाँव का जमींदार और होने पर भी इसका दर्जा, इसका दबदबा और इसकी भलाई उससे बढ़ कर है। अभी नहीं कहा जा

सकता कि पुलिस, पटवारी नहरवाले और जमींदार वा उसका कारिंदा इससे नाराज हैं वा नहीं क्योंकि उनके दुःख दर्द में भी यह सदा तैयार है किंतु इसका जोर बढ़ता देख कर यदि स्वार्थवश, स्वार्थ में हानि पहुँचने के डर से कोई डाह खाता हो तो अचरज क्या!

खैर! जो कुछ होगा आगे चलकर मालूम हो ही जायगा परंतु आज यह न मालूम किस उधेड़ बुन में पड़ा हुआ है। खबर नहीं कि चिलम का तमाखू जल जाने पर भी इसका हुक्के पर ध्यान क्यों नहीं है? ग्यारह की जगह बारह और साढ़े बारह बज गए। बाल बच्चे भूखों मर रहे हैं। बेटे पोते खेत जोतते जाते हैं और भूखों मरते इसे गालियाँ भी देते जाते हैं। इसकी स्त्री पैताने बैठी बैठी इसे पंखा झलती जाती है और बार बार इससे कहती जाती है कि—

"आज तुम्हें हो क्या गया? अब तो बाल बच्चों की सुध लो!"

परंतु इसका उसके कहने पर भी ध्यान नहीं। बहुएँ, बेटियाँ और पतोहुएँ रोटी तरकारी के टोकरे लेकर आ पहुँची हैं। वे भी अपने अपने आदमियों को खिलाकर आप खाने के इरादे से इसके हुक्म की राह देखती हैं और बार बार घूंघट की ओट से इसकी ओर निहारती और फिर अपना सिर झुका लेती हैं। जब तक सब घरवालों के खा लेने की इसके पास रिपोर्ट न पहुँचे तब तक एक दाना भी अपने मुँह में डालने का इसका नियम नहीं और भूख के मारे इसकी भी

आँखें बैठी जाती हैं। आज एकादशी का व्रत है। छोटे बालकों को छोड़ कर सब ही दिन भर में एक बार रोटी खाते हैं। यह इसके घर का नियम है। इस कारण किसी ने कलेऊ नहीं किया है। इस बात को जानने पर भी इसका ध्यान न मालूम किधर है।

खैर! अंत में इसका ध्यान छूटा। "ओहो! बड़ी अबेर हो गई! बाल बच्चे भूखों मर गए। बुलाओ सब को। जल्दी आओ॥" की एक आवाज इसने कड़क के साथ दी और पीपल के नीचे कुछ धूप और थोड़ी छाया में इसके ही जो बालक खेल रहे थे उन्होंने अपना खेल त्याग कर किसी ने "चाचाजी आओ" किसी ने "भाई जी आओ" और किसी ने "मामाजी आओ" की पुकार से आकाश गूँज डाला। हल जोतनेवाले अपनी अपनी जोड़ी लिए हुए आए और लड़के लड़की भैंसों को तलाइयों में छोड़ कर भाग आए। बुढ़िया ने उठ कर अपने अपने हिस्से की रोटियाँ और उन पर तरकारी सब को बाँट दी और जब सारे के सारे अपना अपना पेट भरने में लगे, जब बहुओं और पतोहुओं ने भी मुँह फेर कर खाना आरंभ कर दिया तब बुढ़िया ने चार रोटी कुछ तरकारी और एक कटोरे में थोड़ा सा दूध बूढ़े राम के आगे रख कर कहा—

लो तुम भी खा लो। भूख के मारे आँखें बैठी जाती हैं। न मालूम किस फिक्र में पड़ रहे हो? अपनी भी सुध नहीं।"

"एक बार सब को खा लेने दे, तुझे भूख है तो तू भी खा ले। मैं कुछ देर से खाऊँगा। मुझे भूख कम है।"

"नहीं भूख कम नहीं। न मालूम किसी सोच में हो? छोड़ो इन झगड़ों को। सब अपना अपना दुःख सुख भोग लेंगे। सब ही अपना अपना नसीब लेकर आए हैं। काजी जी दुबले क्यों कि शहर का अंदेशा। जीना हमेशा थोड़े ही है। काल सिर पर नाच रहा है। परलोक भी सँभालो। अब बहुत हो गया। निश्चिंत होकर राम नाम जपो और तीर्थ करके अपना आगा सँभालो।"

"हाँ! सलाह तो ठीक है। पर मेरे लिये ही दूध क्यों? औरों को क्यों नहीं दिया? मैं अकेला बाल बच्चों को छोड़ कर दूध खाऊँ? इस बुढ़ापे में ऐसा पाप? नहीं! मैं न लूँगा। आओ रे बच्चो घूँट घूँट पी जाओ।"

"आज सारा ही दूध फट गया। न जाने किस निपूते की नजर लग गई। सेवा की दुलहिन अल्हड तो है ही। दो पांच बालकों की मा है तब भी इसका बचपन नहीं गया। चूल्हे पर कढ़ाई छोड़ कर अपनी द्योरानी से बातों में उलझ गई। बस इसी की बेपरवाही से आज इतना नुकसान हुआ। मैंने गालियाँ बहुत दीं और सेवा ने मारा भी कम नहीं पर "अब पछताए का होत है जब चिड़ियाँ चुग गईं खेत।"

"खबरदार! (क्रोध से अपनी लाल लाल आँखें निकाल कर लकड़ी उठाते हुए) इस बिचारी गाय को मारा और गाली दी

तो मैं इसी लकड़ी से खोपड़ी फोड़ दूंगा। आया है बदमाश मारने! और क्यों री तैने भी इसको गालियां क्यों दीं? फट गया तो फट गया। जो काम करता है उसके हाथ से नुकसान भी होता है।"

खैर! इसी पर मामला खत्म हो गया। बहू को पास बुलाकर दो बुरी कहीं दो भली कहीं और समझा बुझाकर आयंदा के लिये सचेत कर दिया। जिन जिन को फटकारा था उन्हें पास बुलाकर कुछ समझाने की और कुछ प्यार की बातें करके राजी कर लिया। बस बूढ़े भगवान दास के गृह-राज्य की यही अदालत थी, यही फैसला था और यही सजा थी। इसी के कारण सारा कुनबा खाता पीता, और मौज करता था और आज कल के लोग चाहे हजार "संयुत् कुटुंब" की चाल को नापसंद करें परंतु जब तक बूढ़े बाबा के दम में दम रहा सारा घर उसकी आज्ञा के अधीन सुखी रहा। किसी तरह का आपस में लड़ाई झगड़ा न हुआ और जो कहीं इसका अंकुर पैदा भी हुआ तो इसी तरह उसने कोंपल में ही उसे काट डाला। उसके राज्य में हाली का, ग्वाल का, बढ़ई का, निरानी का, रोपाई का, बुवाई का और इस तरह सब ही काम खेती के, घर गृहस्थी के, मेहनत मजदूरी के घरवाले मिल जुल कर कर लेते थे। जहां तक बन सकता था दान पुण्य के सिवाय, सरकारी लगान और टैक्सों के सिवाय उसका पैसा वृथा नहीं जाता था। उसके मरने के अनंतर इस घर की क्या

दशा हुई सो तो किसी अगले प्रकरण का विषय है परंतु इस तरह झगड़ा निपटाने बाद उसने सब लोगों को सुनाकर आज्ञा दी कि—

'अब मुझे भी देखना है कि मेरे पीछे तुम लोग अपना काम किस तरह करते हो। अच्छा सा दिन देखकर मैं भी पंडित प्रियानाथ जी के साथ यात्रा करने जाऊंगा। मेरे साथ (अपनी स्त्री की ओर संकेत करके) यह और एक लड़का। अच्छा! गोपीबल्लभ तू तैयार होजा। तेरा काम राधारमण कर लेगा।"

"चाचा जी, रुपया?"

'अरे बावले ठाकुर जी के घर में कौन सी कमी है? मैं यहां का लेन देन सब निपटा जाऊँगा और साथ के लिये भी तुम्हें देना पड़ेगा।"

जिस समय इस तरह की बातें हो रहीं थीं तहसील का चपरासी आकर बूढ़े को साथ लिवा लेगया और कोई न जान सका कि क्यों? शायद इसी की उसे पहले से चिंता थी।

प्रकरण—४

प्रियंवदा की सुशिक्षा।

जिस समय की यह घटना है उस समय प्रियंवदा की उमर कोई अट्ठाईस वर्ष की होगी। युरोपियन समाज में जब बीस, पचीस, वर्ष तक की स्त्री लड़की समझी जाती है, जब उन लोगों में विवाह का समय ही बीस से तीस वर्ष तक का है तब यदि प्रियंवदा के अब तक कोई संतान न हुई तो कौन सा अचरज हो गया परंतु नहीं उनकी स्थिति से हमारी दशा में धरती आकाश का सा अंतर हैं। वे सर्द मुल्क के रहनेवाले हैं और हम गर्म देश के। उनके यहाँ जवानी का आरंभ जिस समय होता है उस समय हमारे देश की स्त्रियाँ दो चार बच्चों की माता हो जाती हैं। यदि विवाह के झमेले में पड़कर किसी की जोरू कहलाना न चाहे, यदि उसको परतंत्रता की बेड़ी में पड़ना पसंद न हो तो एक युरोपियन स्त्री आजीवन कुँवारी रह सकती है किंतु हमारे देश के रिवाज से, धर्म शास्त्रों की आज्ञा से हिंदू बालिका का विवाह रजस्वला होने से पूर्व हो जाना चाहिए। उनके लिये उनकी चाल अच्छी और हमारे लिये हमारा नियम अच्छा है। उनके यहाँ स्त्री पुरुष के परस्पर पसंद कर लेने पर, परीक्षा कर

लेने के बाद शादी होती है और हम मानते हैं कि कम उमर में उनकी बुद्धि कच्ची होती है, और इस कारण बाहरी चाकचिक्य देखकर वे एक दूसरे पर मोहित हो जाते हैं। इस मोह का, इस प्रणय का परिणाम तलाक है। बस इसीलिये हमारे शास्त्रकारों ने इसका भार माता पिता पर डाला है। वे मानते हैं कि खूब भूख लग जाने पर खाना देना चाहिए और हमारा सिद्धांत है कि यदि भूख लगने के समय खाना तैयार रहे तो उसकी नियत अखाद्य पदार्थों की ओर न दौड़ेगी। उनका प्रणय और हमारा परिणय है। उनके यहाँ प्रणय पहले और हमारे यहाँ प्रणय पीछे होता है। प्रियंवदा का विवाह ठीक हमारे सिद्धांत के अनुसार ग्यारहवें वर्ष में और इसके बाद उसका गौना पाँचवें वर्ष में हुआ था।

उसकी दादी सुंदरी की आज्ञा से उसकी शिक्षा का भार उसकी विधवा भुआ सुशीला पर डाला गया था। ये दोनों ही उसे शिक्षा देकर पहले सुकन्या फिर सुपत्नी और अनंतर सुमाता बनाना चाहती थीं। इस कारण उन्हें इसको आज कल की स्कूली तालीम दिलाना पसंद न आया। सुशीला ने उसे घर पर पढ़ाने ही का प्रबंध किया। प्रियंवदा के पिता पंडित रिपुसूदन जी की स्थिति ऐसी नहीं थी कि जिससे वे कोई शिक्षिता नौकर रख सकें और जिस क्रम से उसकी शिक्षा का ठहराव हुआ था उसके अनुसार पढ़ानेवाली का मिलना भी कठिन था। इसलिये अपने भजन पूजन से अवकाश

कम होने पर सुशीला ने इसे पढ़ाने का सारा भार अपने ऊपर लिया।

उपन्यासों के पढ़ने में जिन्हें केवल मनोरंजन ही से काम है वे महाशय यदि अपने मनों में ऊब उपजा लें तो मैं उनसे क्षमा माँगता हूँ क्योंकि जिन्हें "आदर्श दंपति" की सुंदरी और "सुशीला विधवा" की सी सुशीला पसंद है, जो अपनी गृहणी को, अपनी बहन बेटी को और अपनी बहुओं को इनकी सी बनाना चाहते हैं उनका इस लेख से कुछ काम अवश्य निकल सकता है। कम से कम उन्हें इतना अवश्य विदित हो जायगा कि स्त्री शिक्षा किस प्रकार की होनी चाहिए।

अस्तु सुशीला ने प्रियंवदा को पुस्तकें पढ़ाने में, घर के काम काज में, मनोरंजन में, माता पिता, पति संतान, सास ससुर और सगे संबंधियों के साथ उसके कर्तव्यों को समझाने के लिये जिस साँचे में ढाला था उसका दिग्दर्शन इस प्रकार से है। उसके साँचे का मुख्य सिद्धांत यही था कि आज कल की नवीन शिक्षा पाकर जिस तरह पति की बराबरी करने पर स्त्रियाँ उतारू हो जाती हैं, आजकल के नवीन समाज में जैसे अंगरेजी तालीम पाकर युवतियाँ पुरुषों का "बेटर हाफ"–(उत्तमार्द्ध) समझी जाने में अपना गौरव समझ बैठी हैं और आजकल जैसे स्त्रियों का दर्जा पुरुषों से भी ऊँचा समझा जाता है, इस बात की गंध–नहीं–दुर्गंध प्रियंवदा के दिमाग में न घुसने पाई। जो लोग स्त्री को "बेटर हाफ" बनाकर उनका दर्जा आकाश

पर चढ़ाने के पक्षपाती हैं वेही उन्हें तलाक देकर दूसरा खसम कर लेने की सम्मति जब दे रहे हैं तब मानों जरासंध के शरीर की तरह एक शरीर के कभी दो टुकड़े करते हैं और फिर कभी जोड़ने का मिथ्या उद्योग करते हैं किंतु इसका फल यही होता है, कि 'टूटे पीछे फिर जुड़े तो गाँठ गठीली होय'। और सो भी एक बार एक के साथ और दूसरी बार दूसरे के साथ। बस इस लिये वह जोड़ा नहीं, वह विवाह नहीं। वह एक ठेका है जो अमुक अमुक बातों पर किया जाता है और यदि संयोगवश, जैसा कि प्रायः होता रहता है, दोनों में से एक भी शर्त चूक गया तो बस एक को छोड़कर दूसरा और दूसरे को छोड़कर तीसरा, कुम्हार की हाँडी की तरह जन्म भर पति बदलौवल अथवा पतिपरिवर्तन हुआ करे।

ये बातें सुंदरी को पसंद न थीं। वह चाहती थी कि प्रियंवदा अपने प्राणनाथ को, अपने हृदयेश्वर को केवल एक ही जन्म में नहीं, जन्मजन्मांतर तक में अपना मालिक माने और सदा ही उसकी दासी होकर रहे। स्त्री अवश्य ही पति की अर्द्धांगिनी है और वह ऐसी अर्द्धांगिनी नहीं है जो जरा सी बात पर चिढ़कर फौरन इस शरीर के दो टुकड़े कर डालने पर उतारू हो। एक बार जुड़ने बाद मर जाने पर भी यह संबंध नहीं छूटता है और मनुष्य ही क्या कर्मवश पशु पक्षी कीट पतंगादि किसी योनि में उन्हें जन्म लेना पड़े दोनों साथ बने रहते हैं। एक बिना दूसरा पल भी नहीं जी सकता है। उसके सिद्धांत का तत्त्व था

"संतुष्टो भार्यया भर्त्ता भर्त्ता भार्या तथैवच,
यस्मिन्नेव कुले नित्यं कल्याणं तत्र वै ध्रुवम् ।"

बस इसी सिद्धांत के अनुसार प्रियंवदा को शिक्षा दी गई। उसको सिखाया गया कि वह पति की दासी बन कर रहे, पति को अपना जीवनसर्वस्व समझे। पति चाहे काना हो, कुरूप हो, कलंकी हो, कोढ़ी हो, कुकर्मी हो, क्रोधी हो, स्त्री के लिये पति के सिवाय दूसरी गति नहीं। संसार में परमेश्वर के समान कोई नहीं किंतु स्त्री का पति ही परमेश्वर है। जिन स्त्रियों का यही अटल सिद्धांत है वे व्यभिचारिणी नहीं हो सकतीं और व्यभिचार से बढ़कर कोई पाप नहीं। इन विचारों को मूल मंत्र मानकर सुशीला ने प्रियंवदा के लिये साँचा तैयार किया। "हिंदू गृहस्थ" उपन्यास में जैसे पुरुषों की शिक्षा के लिये सांचा बनाया गया था और उसी के अनुसार प्रियंवदा के प्राणनाथ प्रियानाथ को शिक्षा दी गई थी उसी तरह इस साँचे में सुशीला ने प्रियंवदा को ढाला।

भोर के चार बजे सब घर वालों से पहले जागकर प्रातः स्मरण, फिर शरीरकृत्य से निपट कर स्नान, विष्णुसहस्रनाम का पाठ और पति के दहने अंगूठे का पूजन। बस इसी पर नित्य नियम समाप्त। फिर घर का छोटा मोटा सब काम। यदि घर में शक्ति के अनुसार एक दो अथवा अधिक नौकर हों तो अच्छी बात है किंतु दिन रात पति की सेवा अपने ही हाथ से करना। रसोई बनाने में उसने प्रियंवदा को ऐसा होशियार

कर दिया कि बड़े बड़े हलवाई भी, बड़े बड़े रसोइए भी जिसके आगे सिर झुकावें। वह कसीदा निकलने में, सीने पिरोने में होशियार। अपने कपड़े सीने में, पति के कपड़े तैयार करने में और बाल बच्चों की पोशाक बनाने में उससे कोई आकर सलाह पूछे। अवकाश पाकर अवश्य ही वह तुलसीकृत रामायण, महाभारत, रागरत्नाकर, ब्रजविलास, प्रेमसागर और मन बहलाव के लिये ऐसे उपन्यासों को जिनसे चित्त में विकार उत्पन्न न हों पढ़ा करती थी किंतु खोटे उपन्यासों को प्रथम तो उसका पति ही उसके पास आने नहीं देता था और जो कहीं भूल से वे आ भी जाँय तो वह उन्हें अपने कमरे में से निकाल कर बाहर फेंक देती थी। एकांत के समय भजन आदि के गान करने में वह निपुण थी। पति को प्रसन्न करने के लिये समय समय पर प्रेमरस, शृंगार रस के गीत गाना भी उसे सिखलाया गया था और ठीक ताल स्वर से, किंतु सो भी केवल कृष्णचरित्र के, जिनसे धर्म का धर्म और कर्म का कर्म दोनों हो। इतना होने पर भी आज कल की मूर्ख स्त्रियों की तरह विवाह शादियों में गालियाँ गाने से क्या सुनने तक से उसे घृणा थी। सुशीला ने "सतीचरित्र संग्रह" जैसी किताबों का संग्रह कर प्रियंवदा को पढ़ाया, इतिहासों से, पुराणों से और जनश्रुति से ऐसे ऐसे चरित्रों का संग्रह कर उन्हें अच्छी तरह उस के मन की पट्टी पर लिख दिया। स्त्री शिक्षा के लिये उसे "स्त्री सुबोधिनी" का क्रम पसंद था परंतु केवल

उसी से काम नहीं चल सकता था इसलिये उसी मूल पर थोड़ा लौट फेर करने के अनंतर सुशीला ने अपनी भतीजी को स्त्रियों के इलाज की, गृहप्रबंध की, हिसाब की शिक्षा दी। उसने समझा दिया कि सास ससुर और जेठ जेठानी का दर्जा माता पिता के समान है, उनके साथ वैसा और देवर देवरानी के साथ भाई बहन का सा बर्ताव करना चाहिए। परंतु बाहर के तो क्या घर के भी किसी पुरुष के साथ हँसना बोलना एकांत में मिलना अथवा उनकी ओर आँख उठाकर देखना अच्छा नहीं। नौकर चाकर भी अपने पास स्त्रियाँ रहें और सो भी बुढ़िया नेक चलन, अच्छी तरह जाँच कर लेने बाद। बस यही उसका पर्दा था। वैसे यदि ससुराल में आज कल का सा कड़ा पर्दा हो तो उसका भंग करने के लिये सुशीला ने तिउरियाँ चढ़ाकर प्रियंवदा को मना कर दिया था किंतु वह नहीं चाहती थी कि कभी उसे बाहर की हवा भी न लगे। सुशीला की शिक्षा ने स्त्रियों के रोगों का इलाज करने में, बालकों के पालन पोषण में और उनके इलाज में तथा उनकी शिक्षा रक्षा में उसे खूब होशियार कर दिया था। परमेश्वर यदि उसे संतान दे तो वह हृष्ट, पुष्ट, बलिष्ट और सदाचारी आज्ञापालक हो—इस में संदेह नहीं।

हिसाब किताब से दुरुस्त रहकर जिस तरह घर का एक पैसा वृथा न जाने देने की उसे कसम थी उसी तरह मनुष्य

तो क्या गाय, तोता और अन्यान्य पशु पक्षियों का भी जी न दुखाना, जो घर में अपने आश्रित होकर रहें उनकी जी जान से रक्षा करना, उनका पालन पोषण करना उसका परम धर्म था। सुशीला ने उसके अंतःकरण में अच्छी तरह ठसा दिया कि पति जिस कार्य से प्रसन्न रहे वही करना, उसके दुख में दुखी और सुख में सुखी रहना। मन में हजार दुख हो किंतु ऐसे अवसर पर पति से कभी न कहना जिससे उसके चित्त को धक्का पहुँचे। कोई काम पति का अप्रिय न करना, जो कुछ अपराध बन जाय तो पति से छिपाना नहीं, यहाँ तक कि सब बातों की रिपोर्ट पति से कर देना। यदि घर में खर्च की तंगी हो, घर में नमक न हो तो भी खाने के समय, आराम के समय कभी तकाजा न करना। कपड़े के लिये, जेवर के लिये पति को कभी तंग न करना बल्कि उसकी इच्छा पर छोड़ देना ताकि वह स्वयं खटक रखकर बनवाए। उसकी इच्छा ही को अपनी इच्छा समझना।

बस यही प्रियंवदा की शिक्षा का दिग्दर्शन है। लड़की गरीब मा बाप की थी। कुंकुम और कन्या के सिवाय लड़की के पिता से एक पाई भी मिलने की आशा न थी। बड़े बड़े लखपतियों के यहाँ से सगाइयाँ भी दो चार आई थीं और उनसे रुपया भी दहेज में बहुत मिलने की संभावना थी किंतु प्रियानाथ के पिता रमानाथ के अंतःकरण में प्रियंवदा के गुण खूब ही खुप गए थे। लोगों के हज़ार लालच देने पर

भी रामनाथ पंडित ने अपने पुत्र को इससे ही व्याहना पसंद किया था। प्रियंवदा बहुत सुंदरी नहीं थी। वह आँख नाक से अच्छी थी किंतु रंग गोरा नहीं था, गेंहुआ था। इस बात पर पंडित रामनाथ और उनकी स्त्री से बहस भी बहुत हुई थी। प्रेमदा गोरी न होना दोष मानकर इस संबंध से प्रसन्न नहीं थी और रामनाथ कहते थे कि—"गोरी न होना गुण है, दोष नहीं।"

अस्तु विवाह के बाद जब वह ससुराल आई तो पति ने अच्छी अच्छी पुस्तकें तलाश करके उसे देना, पुराणों में से इतिहासों में से, और और ग्रंथों में से अच्छे अच्छे प्रसंग निकाल कर उन पर पेंसिल से चिह्न लगाने और निज पत्नी का उन पर विशेष रूप से ध्यान दिलाने का भार अपने ऊपर लिया। वहाँ आने के बाद पति ने उसे थोड़ी संस्कृत और अंगरेजी भी पढ़ाई। अंगरेजी केवल इतनी जिससे आवश्यकता पड़ जाय तो तार दूसरे से पढ़ाने के लिये किसी का मुंह ताकना न पड़े। इस तरह पति को गुरु बनाने में प्रियंवदा ने आना कानी भी की। उसने कहा—

"नहीं साहब! यह न होगा। गुरु बनाने के बाद पति पत्नी का संबंध रहना अयोग्य है। या तो गुरु ही बनिए अथवा........."

"अच्छा गुरु नहीं बनाना चाहती है तो (एक हलकी सी चपत लगाकर मुसकराते हुए) आप ही हमारे गुरु सही!"

"अजी साहब ! हमें गुरु बनाओगे तो पछताना पड़ेगा । स्त्री को गुरु बनाना उसे माथे चढ़ाना है । और माथे चढ़ाने से मेरा बिगाड़ है, आपका सुख किरकिरा हो जायगा । मुझे तो आप अपनी चेरी बनाओ । आपकी दासी हूँ !"

"अच्छा तो मैं तेरा गुरु, और तू मेरी गुरुआनी ।"

"गुरुआनी तो आपकी नहीं, आपके शिष्यों की ।"

"हाँ ! सो तो ठीक परंतु मैं तुझे अंगरेजी पढ़ा दूँ और तू मुझे......'

"हाँ ! हाँ ! ! चुप क्यों हो गए ? फर्माइए न ?"

"अच्छा जो तेरी इच्छा हो सो ही ।"

बस इसी पर मामला तै हुआ । इस प्रकार से सुशीला की सान पर चढ़कर प्रियंवदा रूपी जो हीरा तैयार हुआ था उसे प्रियानाथ के संग ने ओप दिया । उनके लिये वह सच्ची प्रियंवदा और उसके लिये वे सच्चे प्रियानाथ थे । अब आगामि प्रकरणों में यह देखना है कि यह जोड़ी कहाँ तक सुखी रही, इस पर क्या क्या बीती और कैसे इसने अपने कर्त्तव्य का पालन किया । तब ही मालूम होगा कि इन्होंने कष्ट उठाया सो भी सीमा तक और इनको सुख हुआ सो भी सीमा तक ।

प्रकरण—५

भूत की लीला।

"जीते भी मेरी नस नस में तेल डाला और अब मर जाने पर भी मुझे कल से नहीं बैठने देती है। भगवान उनका स्वर्गवास करे। जब तक वह रहे कुछ इलाज भी होता रहा। अब इनसे कहती हूँ तो प्रथम तो इनके नाराज हो जाने का डर है क्योंकि यह बात ही ऐसी है। शायद यही ख्याल कर बैठें कि हमारे आदमियों को झूटमूठ बदनाम करती है। इनका ऐसा ख्याल कर लेना ही मेरे लिये मौत से बढ़कर सजा है और जो कहूँ भी तो यह इस बात को सच्चा नहीं मानेंगे। 'वाहियात! वाहियात!' कहकर उड़ा देंगे। हाय! कहाँ जाऊँ! और किस से कहूँ!! मेरा कलेजा खाये जाती है। निपूता कुछ हो भी तो कहाँ से हो?"

इतना कहकर वह रमणी दुपट्टा तान कर सोई भी परंतु जब कमरे में चारों ओर से चिनगारियाँ बरस कर चिराग गुल हो गया, अँधेरा होते ही जब "ऊँ! ऊँ!! ऊँ!!!" की आवाज इस युवती के कान के परदे फाड़ने लगी और जब कभी रोने और कभी खिलखिला कर हँसने की आवाज आने लगी तब इस बिचारी को नींद कहाँ! नींद निगोड़ी तो मानों आज आँखों से रूठ कर पकड़े जाने के डर से काले चोर की

तरह भाग गई है। डर के मारे कलेजा थरथरा रहा है, शरीर के रोंगटे खड़े हो रहे हैं। आँखों में से आँसुओं की धारा बह रही है। फिर चिराग जलाती है और फिर गुल होता है। एक बार जलाया और दो बार जलाया और नौ बार जलाया। हद हो गई। यदि जीवनसर्वस्व ही पास हो तो डर काहे का? परंतु वह भी आज अभी तक नहीं आए। घंटे गिनते गिनते बावली हो गई। कह यह गए थे कि—"जल्दी आऊँगा।" परंतु क्या यही जल्दी है? बारह बजे, एक बजा और दो बज गए। उकता कर किवाड़ खोला तो सामने एक काला काला भूत! भूत भी ऐसा वैसा नहीं विचित्र भूत! जब पहले उसे देखा तब बच्चा सा था। फिर बच्चे से आदमी हुआ और अब बढ़ते बढ़ते ताड़ सा हो गया। आँखें देखो तो दो मशाल सी और दाँत! दाँतों की न पूछो बात? लाल लाल लंबे लंबे, बड़ी बड़ी गाजर से और डाढ़ी मोछों के बाल! मानों मुँह पर झाड़ू लटका दी है, बदन काला, काला काले तवे के पेंदे सा और हाथ पैर मानों हाथी की सी सूँड़! बस देखते ही एक दम घबड़ा उठी। "हाय मरी! हे नाथ बचाइयो!" कह कर तुरंत ही धड़ाम से गिरी, गिरते ही उसे तन बदन की सुधि जाती रही, धड़ाम का शब्द भी एक बार नहीं। जब एक सीढ़ी से दूसरी पर और दूसरी से तीसरी पर इस तरह गिरती पड़ती सात सीढ़ियों पर गिरी तब आवाज भी धड़ाम! धड़ाम!! सात बार आनी ही

चाहिए। उसके गिरने के शब्द से डर के मारे मोर "म्याओं म्याओं" कर उठे, बंदर डालियां पकड़ पकड़ कर चिचियाने लगे और मुहल्ले वालों के भी कान खड़े हो गए।

बाहर से आकर चौकीदार ने आवाज दी—

"चोर है चोर! जल्दी दौड़ो चोर है।"

"हैं! कहां चोर है? क्या हमारे मकान में?" कहता हुआ एक आदमी दौड़ कर आया। और चौकीदार ने—"हाँ" कह कर अंगुली के इशारे से मकान दिखलाया। आने वाले ने दरवाजा खटखटाया तो भीतर से कुंडी बंद। एक बार, दो बार, तीन बार जोर जोर से चिल्ला चिल्ला कर "किवाड़ा खोलो?" पुकारा तो जवाब नहीं। लाचार होकर इसने चौकीदार की सहायता से किवाड़ तोड़ा। भीतर जाकर ज्यों ही इसने जेबी लालटेन की रोशनी में वहां का दृश्य देखा तो इसका ऊपर का सांस ऊपर और नीचे का नीचे रह गया। पसीने से कपड़े तर। वहाँ जाकर देखता क्या है कि उस रमणी के सिर में से लोहू के पनाले बह रहे हैं। छाती में धड़के के सिवाय कहीं नाड़ी का पता नहीं। शरीर ठंढा पड़ता जाता है। हाथ पैर सँभाले तो बर्फ जैसे शीतल। उसे कपड़े की बिलकुल सुधि नहीं और आँखें फाड़ कर देखी तो सफेदी के सिवाय कहीं काली पुतलियों का नाम नहीं। इसकी ऐसी दशा देख कर एक बार यह अवश्य ही घबड़ाया, इसने यह निश्चय समझ लिया कि अब इसके प्राणों से हाथ धो बैठे।

"हाय ! बड़ा अनर्थ हो गया !" कह कर यह रोया भी कम नहीं। इसने इस युवती के इस तरह एकाएक गिर जाने का कारण जानने का भी बहुतेरा प्रयत्न किया परंतु न तो इसे कोई चिह्न ही ऐसा मिल सका जिससे इसे कुछ भेद मालूम हो सके और न घर की गैया ही ने गवाही दी कि माजरा क्या है। यदि रात के बदले दिन होता तो शायद यह पींजरे के तोते से भी पूछ सकता था किंतु वह भी इस समय घोर निद्रा में है।

अस्तु ! घबड़ा जाने पर भी इसने अपना साहस न छोड़ा। यह उन्हीं लोगों में से एक था जिनका सिद्धांत है—

"विपदि धैर्य्यमथाभ्युदये क्षमा
सदसि।वाकपटुता युधि विक्रमः।
यशसि चाभिरुचिर्व्यसनं श्रुतौ
प्रकृति सिद्धमिदं हि महात्मनाम् ॥"

बस इसने चिराग के उजाले में एक बार उसके घाव धोकर गीला कपड़ा बांधा और तब अपनी ओषधियों की पिटारी में से कस्तूरी निकाल कर इसके मुँह में डाली और साथ ही श्वासकुठार इसकी आँखों में आँज दिया। कोई आधे घंटे में जब उसे होश आया तब "हाय मरी रे ! हाय मार डाला रे !' कह कर इसने आखें खोलीं। "हे राम ! हे दीन-बंधु !! हाय। इस विपत्ति के समय वह कहाँ हैं ?" कह कर फिर आँखें बंद कर लीं। "मैं यहीं हूं। मैं आगया हूं ! अब

घबड़ाओ नहीं, मैं आ गया।" कह कर इसने ढाढस दिलाया और तब अपने पास बैठे हुए अपनी सेवा करनेवाले को पह-चान कर—

"हैं हैं! यह क्या गजब करते हो? अजी मुझे नरक में न डालो। तुमसे और ऐसी सेवा? हे भगवान मौत दे दे।" कहती हुई वह इसके गले से लिपट गई। इसने छाती से लगा कर उसे ढाढ़स दिया, दवा देकर उसे आरोग्य किया, और पाँच सात दिन में जब उसमें उठने बैठने की शक्ति आ गई तब एक दिन उसे प्रसन्न देख कर उससे पूछा—

"मामला क्या था? कुछ कारण समझ में न आया!"

"कारण? कारण (आंखों में आँसू भर कर) मुझ से न पूछो। कारण बताते हुए मुझे संकोच होता है, डर लगता है। बस इसी लिये मैं वर्षों से छिपाती हूं। आज तक मैंने कोई बात तुम से नहीं छिपाई परंतु कुछ ऐसा ही कारण है जिसमें मैंने बड़े बड़े संकट सह कर भी तुम्हारे आगे इसकी चर्चा न की।"

"मैं बेशक वर्षों से देखता हूं कि तू सूखी जाती है। तेरे शरीर में कोई रोग न होने पर भी तू सूखती क्यों है? कारण बता? तुझे बताना पड़ेगा?"

"अजी कारण न पूछो? कारण बताने में मुझे संकोच होता है। मुझे डर होता है कि कहीं तुम नाराज न हो जाओ?"

"तू जानती है कि मैं अभी तक तुझ पर कभी क्रुद्ध नहीं

हुआ। तू जब कोई काम ही ऐसा नहीं करती है तब मैं क्यों होऊं? यदि तुझसे कुछ अपराध भी हो गया होगा तो मैं क्षमा करता हूं। जो कुछ हो कह दे। निर्भय होकर कह डाल। नहीं तो मुझे भय है कि मैं तुझसे किसी दिन हाथ धो बैठूंगा।"

"नहीं! अभी तक मुझसे कोई अपराध नहीं बना है परंतु इस बात का कह देना ही अपराध है। खैर आप क्षमा कर चुके, आपका इस बात के जानने के लिये इतना आग्रह है और इसी पर मेरे जीवन मरण का जब आधार है तो मुझे अवश्य कहना पड़ेगा।"

हां! हां!! तो कहती क्यों नहीं? पहेली क्यों बुझाती है।"

"अच्छा सुनिए। जब मैं तुम्हारे साथ परदेश रहती हूं तब बहुत ही मौज से गुजरती है। तब ही मैं घर आने का नाम सुनते ही घबड़ाया करती हूं। जब से यहां आई हूं तब से मुझे न तो खाते चैन लेने देती हैं और न सोते। निपूती नींद से भी दुश्मनी हो गई है। दिन रात, घर में, बाहर, जहाँ देखो वहां, हर घड़ी मेरी आँखों के सामने। कभी रोती हैं, कभी हँसती हैं, कभी, आग बरसाती हैं और कभी भयानक भयानक सूरतें दिखाकर मुझे डराती हैं। जब तक जीवित रहीं तब तक मेरी नस नस में तेल डाला और अब मर जाने पर मेरा कलेजा खाए जाती हैं। कुछ हो भी तो कहाँ से हो? इस घर में रहोगे तो एक न एक दिन मुझे मरी समझना।"

"घबड़ाओ नहीं। मरने न देंगे परंतु वह है कौन? क्या भूत है? या प्रेत है? अथवा पिशाच है? है कौन?"

"मैंने सब कुछ कह दिया। अब हाथ जोड़ती हूं मुझ से नाम न कहलाओ। क्या कहूं? अच्छा कहना ही पड़ेगा! मेरी मा है।"

"नहीं! तेरी मा नहीं, मेरी मा। तेरी मा तो अभी तक जीती जागती है। वह भूतनी बनकर तुझे कहाँ सताने आई। उस दिन छोटे भैया ने भी कुछ जिक्र किया था परंतु मैं इन बातों को मिथ्या मानता हूं इसी लिये मैंने उसकी बात पर कान नहीं दिया। यदि तेरा कहना सत्य भी हो (क्योंकि मैं तुझे झूठी नहीं मानता) तो जीते जी उसने क्या दुःख दिया? मैंने कभी कुछ शिकायत नहीं सुनी?"

"बेशक! मैंने आप से कभी नहीं कहा। दुःख सुख सब नसीब के हैं फिर तुम्हें सताने से फायदा ही क्या? और जो जान भी लेते तो कर क्या सकते? थीं तो तुम्हारी मा ही और जो तुम्हारी मा वही मेरी मा-मा से भी बढ़कर पूज्य, फिर उनकी बुराई यदि मेरी जबान से निकले तो जीभ जल जाय। अब की भी सिर पर आ बीती है तब झक मार कर आपके आग्रह करने से कहना पड़ा है क्योंकि दुःख पाकर मर जाना अच्छा। परंतु माता पिता की निंदा भगवान कभी न करावे।"

"अच्छा तो कह दे न? बात क्या थी?"

"मैं पहले क्षमा मांगती हूं। मेरा अपराध यही था कि मैं गरीब घर की बेटी हूं। मेरे विवाह से उनकी साद नहीं पूरी। बस इस बात का हर दम ताना दिया करती थीं। कभी कभी गालियाँ देती थीं और कभी मेरी जबान से कुछ जवाब निकल गया तो मार भी बैठती थीं।"

"और छोटे भैया की बहू के साथ ?"

"वह लखपती की बेटी है। प्रथम तो वह लाई है सब कुछ फिर वह धनवान् की दुलारी बेटी ठहरी। उससे एक बात कहे तो वह उत्तर में सत्रह सुनावे। 'वक्र चंद्रमहिं ग्रसै न राहू।' वह अब भी कहती है कि भाभीजी की तरह मुझे सतावे तो मैं झाड़ू से खबर लूं। मैं हाथ जोड़ती हूं तो मुझे तंग करती हैं और वह गालियां सुनाती है तो उसकी ओर फट-कती तक नहीं।"

"अच्छा! खैर! परंतु इसका उपाय ?"

"उपाय एक नहीं मैं अनेक बार कह चुकी। उपाय वही गया श्राद्ध वह चाहती हैं। कई बार मुझ से कहा भी है।"

"मेरी माता को ऐसी योनि मिले मैं कभी नहीं मानता। तुझे कुछ वहम हो गया है। नहीं तो सब वाहियात हैं। सरासर झूठ है।

इतने ही में बाहर से आवाज आई—"नहीं बिलकुल सच है।" "हैं! यह किसने कहा ?" कह कर पंडित प्रियानाथ देखने के लिये बाहर निकले और वहाँ किसी को न पाकर

कुछ स्वर पहचानने से आँखों में आँसू बहाते हुए भीतर आकर रोने लगे। "हाय माता! तेरी यह गति क्यों हुई? हे भगवान! तू जाने! मेरी गैया जैसी पवित्र माता की ऐसी गति!" कह कर उन्होंने ज्यों ही छाती में एक घूँसा मारने के लिये हाथ उठाया प्रियंवदा ने—"हैं हैं! यह क्या करते हो?" कह कर उनका हाथ पकड़ लिया। घटना इस दर्जे तक पहुँच जाने पर भी जब इस बात को उन्होंने सत्य न माना तब मैं भी इसे अभी सच्ची नहीं कह सकता हूँ। शायद आगे चल कर इसमें कुछ भेद ही निकल आवे अथवा न भी निकले किंतु यह उस समय की बात है जब प्रथम प्रकरण में लिखी हुई घटना बहुत पहले हो चुकी थी। इतना अवश्य कह देना चाहिए कि जो कुछ प्रियंवदा ने पति से कहा वह देवर कांतानाथ की राय लेकर। देवर भौजाई की इस विषय में एक राय थी।

प्रकरण — ६

कर्कशा सुखदा।

गत प्रकरणों से पाठकों ने जान लिया होगा कि पंडित प्रियानाथ के माता पिता का देहांत हो चुका था। उनकी स्त्री उनका छोटा भाई और उसकी बहू यही कुटुंब था। संतान जैसे उनके नहीं होती थी वैसे उनके भाई के हो हो कर मर जाया करती थी। संतान के विषय में जो विचार प्रियंवदा के थे लगभग वे ही छोटे भैया और उसके स्त्री के भी। ये तीनों ही मिलकर इसका दोष माता पर मढ़ा करते थे। यदि माता का भूत हो आना सत्य ही निकले और प्रियानाथ को चाहे इस घटना पर संदेह ही क्यों न हो परंतु ये तीनों इस बात को सच्चा समझते थे। इसलिये यदि पति के भय से प्रियंवदा इस अत्याचार को और लोकलाज से छोटे भैया इस कष्ट को चुप चाप सह लेते थे तो कांतानाथ की बहू जब जी में आता अपनी सास को अपने पति की माता को सैकड़ों गालियाँ सुनाया करती थी। यदि किसी दिन उसका पति उसे समझाता कुछ धमकाता अथवा चिरौरी करता तो झाड़ू लेकर उसके सामने हो जाने में भी वह कभी नहीं चूकती थी। उसका मकूला था—"जो वह राँड मेरे बेटे बेटियों को खाने से न चूके तो क्या मैं गाली देने से भी जाऊँ? मैं गाली

दूंगी, और हज़ार बार गाली दूंगी। जो (अपने पति को सुना कर) किसी को बुरा लगे तो कानों में ऊँगलियाँ देले--इट्ठे ठूंस ले।" इस बात पर पति यदि उसे मारता तो या तो लात के बदले लात और अपने प्राणनाथ की इतनी सेवा न बन सके तो गालियों में कसर ही क्यों चाहिए। वह स्पष्ट कहती ही थी कि—"मैं ऐसी कंजूस थोड़े ही हूं जो गालियों में कसर करूं।"

कांतानाथ बिलकुल चुप था। यदि किसी दिन भाभी के आगे इस बात की चर्चा हो तो हो भी, किंतु भाई से पुकारने की उसने एक तरह सौगंद सी खा रक्खी थी। उसने कई बार कहना भी चाहा परंतु अपनी ही बहू की पिता समान भाई के सामने चुगली खाने में उसे लज्जा आती थी और यदि कहा भी जाय तो वह उसका क्या कर सकते थे? इसके सिवाय वह अच्छी तरह जानता था कि भाई पढ़े लिखे आदमी हैं, भूत प्रेतों की कहानियों पर उनका विश्वास नहीं इसलिये मन मार कर रह जाता था।

कांतानाथ यदि लोक लाज के भय से, भाई से डर कर अपना इस तरह मन मसोसा करे तो कर सकता है क्योंकि वह "सेर सूत की पगड़ी" बाँधता है परंतु जो स्त्री अपने जीवनसर्वस्व को झाड़ू मार देने में न चूके वह जेठ को सुना देने में कब कसर कर सकती है। यों जिस समय जेठ जी साहब घर में आवें उनके आगे वह कभी नहीं निकलती थी। निक-

लना क्या सदा इस बात का प्रयत्न करती रहती थी कि कहीं उसका बोल भी उनके कानों तक न पहुँच जाय। भले घर की स्त्रियां इस बात में अपनी शोभा समझती हैं और शोभा है भी सही। केवल इतना ही क्यों? वह देवर से बातचीत करने और देवर देवरानी के समक्ष पति से संभाषण करने पर अपनी जेठानी की भी निंदा किया करती थी। और हिंदू समाज का नियम ही ऐसा है। जब हिंदू ललनाओं की हज़ारों वर्षों से ऐसी आदत पड़ रही है तब ऐसी निंदा पर मैं सुखदा को दोषी नहीं ठहरा सकता, किंतु जिस समय गालियां देने अथवा गालियां गाने का अवसर आता तब ऐसे विचारों को वह भूल जाती थी, लज्जा उसके पास से काफ़ूर हो जाती थी। दिन भर उसके मुँह के आगे से यदि घूंघट टल जाय तो बात ही क्या, उसके सिर की साड़ी भी डर के मारे नीचे गिर जाय तो क्या चिंता। उसका सिर खुला, उसका मुँह खुला और उसकी अंगियां तक खुली, यहां तक कि वह अपनी कमर को बार बार यदि न सँभाला करे, यदि उसे हाथ से पकड़ना भूल जाय, तो शायद उसकी धोती भी धरती का चुंबन करके वह नये ढंग की "तिलोत्तमा" बनने में कसर न करे।

गालियाँ गाने में वह उस्ताद थी। जैसे सुशीला ने प्रियंवदा को पति को प्रसन्न करने के लिये अथवा जी बहलाने के लिये भक्तिरस और शृंगाररस की कविता करने का थोड़ा बहुत

अभ्यास करा दिया था वैसे ही सुखदा ने अपने मैके में रह कर खोटी निर्लज्ज स्त्रियों की चटसाल में मानों गाली गाना सीखा था। सीखा क्या था बढ़िया से बढ़िया डिगरी प्राप्त की थी। वह केवल गाती ही नहीं थी बरन नई नई गालियाँ बनाया भी करती थी। इस बात के लिये जाति बिरादरी की औरतों में गली मोहल्ले की लुगाइयों में उसका बड़ा नाम था।

आज भी एक घटना हो गई। यदि यह बात न होती तो पंडित जी न जानते कि बहू इन गुणों में निपुण है, परीक्षा पास कर चुकी है। उनके सौभाग्य से, नहीं नहीं दुर्भाग्य से आज पंडित जी के प्रारब्ध ने ऐसा ही एक अवसर उनके सामने ला खड़ा किया जिससे बहू के दोनों गुणों की उन्हें बानगी मालूम हो जाय। घटना यों हुई कि सुखदा के पीहर से तार द्वारा ख़बर मिली कि उसके चचेरे भाई के लड़का हुआ है। ऐसा सुसंवाद पाकर यदि उसने नातेदारों को, अड़ोस पड़ोस वालों को और आने जाने वालों को न्योता दिया, लड़के के लिये बढ़िया से बढ़िया कपड़े और जेवर तैयार कराए तो कुछ अनुचित नहीं किया क्योंकि प्रथम तो ऐसा करना एक तरह दस्तूर सा समझ लेना चाहिए फिर उसने इस काम के लिये पति से एक पैसा न मांगा जो कुछ इस तरह की, तैयारी में लगाया वह अपनी गिरह से अपने पिता के दिए हुए द्रव्य में से। इस कारण अधिक खर्च करना एकाध बार फिजूल बत-

खाने पर भी कांतानाथ ने कुछ जोर न दिया। और प्रियंवदा को तो गरज ही क्या जो अपनी देवरानी को उपदेश देकर अपने ही कपड़े फड़वावे।

खैर उसने लड्डू, कचौड़ी मोहनभोग, जलेबी आदि भांति भांति की सामग्री कर के सबको पेट भर जिमाया और बालक के लिये जो जो बनवाया गया था वह सब लोगों को दिखलाया भी। यहां तक सब प्रकार की खैर रही परंतु जब इतना हो चुका तो 'गीत गान बिना कार्य की शोभा ही क्या ?' बस इसी बिचार से रात्रि के समय गौनहारियाँ बुलाई गईं, जाति बिरादरी की और अड़ोस पड़ोस की स्त्रियों को याद किदा गया और उनमें बाटने के लिये बताशे भी मँगवाए गए। पहले पहले खूब ही अच्छे अच्छे इस उत्सव के निमित्त लड़का होने की खुशी में गीत गाए गए किंतु जब ऐसा गाना बजाना समाप्त हो चुका तो प्रियंवदा के हज़ार नाहीं करने पर भी औरतों ने गाली गाना आरंभ कर दिया। वह घबड़ा कर, शर्मा कर और सिर दर्द करने का बहाना करके उठी भी परंतु किसी ने उठने न दिया। उसने स्पष्ट कह दिया।

"मैं ऐसी बेपर्दगी की जगह एक मिनट भी नहीं ठहर सकती। तुम्हें शर्म नहीं आती तो तुम जी खोल कर बको। मैं ऐसी बातें सुनने से लाज के मारे मरी जाती हूं।"

वह घर में बड़ी बूढ़ी थी, जाते जाते जो रहे वही बड़ा।

उसके मुँह से ऐसा वाक्य निकलते ही सब की सब स्त्रियाँ गालियाँ गाने के बदले गालियाँ देती हुईं प्रियंवदा पर नाना प्रकार के इलजाम लगाती हुईं ढोलक को फोड़कर खड़ी हो गईं। किस ने कहा—"राँड खुद बुरी है और हमें बेपर्द बताती है।" कोई बोली—"और बातों शर्म नहीं केवल लुगाइयों में बैठ कर गीत गाने में लाज?" कोई कहने लगी—"बड़ो बूढ़ों की चाल है। इसके कहने से हम कैसे छोड़ दें?" और किसी ने कहा—"अरी बहन, बड़ी दिलजली है, अपने पेट में कुछ नहीं और औरों का भी नहीं सुहाता।" तब एक ने कहा—"हाँ! हाँ! सच है। बिचारी सुखदा पहले ही अपने पेट के दुःख से मरी जाती है। अब इस को इसके भाई का होना भी नहीं सुहाया।" फिर दूसरी बोली—"हजार छाती कूटो जो भगवान ने लंबे हाथों दिया है तो उसका बाल भी बाँका न होगा।"

इतनी देर तक सुखदा चुपचाप खड़ी खड़ी सुन रही थी। वह देखती थी कि देखें क्या होता है किंतु जाती वार उसे जोश दिलाने के लिये सबने एक स्वर से कहा—

"ले बहन हम जाती हैं। अब हमने तेरे यहाँ आने की सौगंध खाई। ऐसी क्या हम बजारू औरतें हैं जो तेरे यहाँ अपनी इज्जत बिगड़वाने आवें। तुम लाजवंती हो तो अपने घर की! हम बेपर्द ही सही।" इतना कह कर ज्यों हीं वे चलने लगीं सुखदा ने—"नहीं नहीं! बहन मत जाओ। तुम

इस के यहाँ थोड़ी ही आई हो जो रूठ कर जाती हो। खुद बेहया है, और औरों को बेशर्म बतलाती है। टुकड़ैल कहीं की?" इस तरह बक झक कर जब वह सब स्त्रियों को रोक चुकी तब सच मुच ही झाड़ू लेकर अपनी जेठानी के सामने हुई। उसे मारा, उसकी धोती पकड़ खैंचने लगी और तब बोली—

"देखूँ तू कैसी पर्देदार है? आज दस लुगाइयों में तेरी इज्ज़त ही न बिगड़ जाय तो मैं सुखदा काहे की? लुच्ची कहीं की! औरों से आँखें लड़ाने में, अपने (अपने पति की ओर इशारा करके) खसम से हँस हँस कर बोलने में लाज नहीं और लुगाइयों की गालियाँ सुनने में इसकी इज्ज़त बिगड़ती है। लाज आती है तो कानों में कपड़ा ठूँस ले। राँड! टुकड़ैल! भिखारी मा बाप की बेटी है ना? न जैसी आप बाँझ वैसी ही औरों को निपूती करना चाहती है। बाँझ के मुँह देखे का धर्म नहीं। वह राँड हत्यारी क्या खा गई मेरे बेटों को तू खाती जाती है रे मेरे कलेजे को! हाय मेरा पूत। जब तक यह डायन इस घर में रहेगी एक भी लाल हाय! लाल! न जियेगा।" इस तरह एक दो नहीं सैकड़ों गालियों के गोले बरसाने लगी। उसकी गालियाँ में जो निर्लज्जता थी उसे निकाल कर सीधी सीधी गालियाँ ही यहाँ लिखी गई है। इसकी गालियाँ सुनकर प्रियंवदा चुप। इसका कपड़ा सिर को, सीने को, और मुँह को छोड़कर जब कमर

छोड़ने की तैयारी कर रहा है, जब इसके बाल बिखर कर, होंठ फड़फड़ा रहे हैं तब प्रियंवदा अपनी धोती खुल जाने के डर से उसे जोर से थामे हुए आँखों से आंसू ढरकाती हुई खड़ी खड़ी रोने के सिवाय चुप।

मकान के भीतर यों हल्ला गुल्ला जिस समय हो रहा था कांतानाथ बाहर खड़ा खड़ा एक एक बात सुनकर अपने नसीब पर अपनी छाती ठोंकता था, कभी क्रोध में आकर अपनी जोरू की नाक काटने पर उतारू होता था तो कभी अपने बड़े बूढ़ों की बात में बट्टा लग जाने के भय से योंही मन मसोस कर रह जाता था। वह अपने मन में भली भाँति जानता था कि उसकी जोरू नहीं सांप का पिटारा है। उसे निश्चय था कि यदि मैंने थोड़ा सा भी छेड़ा तो मेरी झाड़ू से खबर ली जायगी। पिटते पिटते मेरी चांद गंजी हो जायगी। परंतु उससे अब रहा न गया। "हैं! क्या है? क्या है? मामला क्या है?" करता हुआ वह धसमसा कर भीतर आया। वहाँ आकर—

"बस बस! बहुत हो गया। भागवान अब तो चुप हो! मेरी मां के बराबर भौजाई से ऐसा बर्ताव! हरामजादी, तुझे शर्म नहीं आती। निकल मेरे घर में से रांड़! बच्चों को आप खा गई और औरों पर कलंक लगाती है। बच्चों को खा गया तेरा कलह। और जब मुझे भी खा जायगा, इस घर को चौपट कर देगा तब तेरे पितर पानी पियेंगे। रांड निकल घर में से। तुम रांड से तो मैं रँडुआ ही भला।"

"रँडुआ भला है तो मुझे जहर देकर मार डाल। नहीं निकलूंगी इस घर में से। मैं क्या तेरे बाप का खाती हूं जो निकलूं। लाई हूं गट्ठड और रहती हूं।" इस तरह सुखदा अनेक भद्दी से भद्दी और अश्लील गालियाँ सुनाती जाती थी और जेठानी को छोड़कर पति पर झाड़ू भी फटकारती जाती थी। इस मार कूट को देखकर सब लुगाइयाँ एक एक करके खसक गईं। प्रियंवदा अवसर देखकर अपनी जान लिए वहाँ से भागी। उसने पति के पास जाकर रो रो कर सारा किस्सा सुनाया। "हां मैंने सब सुन लिया है। औरत नहीं एक बला है। अब तू उसके पास हरगिज न जाना।" कहते हुए प्रियंवदा के आंसू पोंछ कर प्रियानाथ ने उसे अपनी छाती से लगाया और सुखदा अपना सारा सामान गाड़ी पर लदवा कर भोर होते ही अपने मैके चल दी। अब देखना चाहिए कि कांता-नाथ की और सुखदा की लड़ाई का क्या परिणाम हो। समय सब बतला देगा।

प्रकरण—७

रेल की हड़ताल ।

"मामला क्या है? आज इस छोटे से स्टेशन पर इतनी भीड़? कोई हजार बारह सौ आदमियों से कम न होंगे, स्टेशन पर एक दो–नहीं–पांच–सात गाड़ियां खाली खड़ी हैं। गाड़ियों से मतलब केवल उस गाड़ी से नहीं जिसको लोग डब्बा कहते हैं और अंगरेजी में कैरेज। गाड़ियां अर्थात् ट्रेनें। एक एक ट्रेन में बीस बीस गाड़ियाँ। न कोई टिकट देनेवाला मिलता है और न जिसके पास टिकिट है उन्हें गाड़ी पर सवार करनेवाला। स्टेशन का रंग ढंग देखने से मालूम होता है कि आज इनका कोई मर गया है। परंतु मर गया होता तो हँसी दिल्लगी क्यों करते? स्टेशन के बाबू, खलासी, नौकर चाकर आज या तो मुसाफिरों का ठट्ठा करते हैं अथवा आपस में घुसपुस घुसपुस बातें। "अजी बाबू जी, ए सरकार, अजी अन्नदाता, हम भूख प्यास के मारे मरे जाते हैं। यह जेठ की दुपहरी और ऐसी जोर शोर की लू! कहीं सिर मारने के लिये छाया का नाम नहीं। दस बीस आदमी हैजे से मर जांय तो कुछ अचरज नहीं। गाड़ी कब जायगी? हम मरे जाते हैं हे भगवान! हमारी सुनो।" भीड़ में से इस प्रकार की पुकार एक बार नहीं, अनेक बार मचती है, स्त्री

बालक रोते चिल्लाते हैं—रो रो कर गगनभेदी चिल्लाहट से कलेजे के किवाड़ फाड़े डालते हैं परंतु इनकी पुकार सुननेवाला नहीं।

सरकार ने मुसाफिरों के आराम के लिये स्टेशन पर जल के नल लगा दिये हैं परंतु उनमें एक बूँद पानी नहीं। स्टेशन से गांव ढाई तीन कोस और मुसाफिरों के पास अनाप सनाप बोझा। आज कुली मजदूरों ने बोझा उठाने की कसम खा ली और गाड़ी मिलते ही अपने ही अपने काम के लिये रवाना होने की मृगतृष्णा। इसलिये गांव को चले भी जांय तो कैसे जांय? स्टेशन पर एक कुआँ नहीं, छोटी सी कुइयाँ है। प्रथम तो स्टेशनों पर पानी पांड़े रहने से और फिर जल के नल लग जाने से मुसाफिरों ने अपने साथ डोर लोटा रखना ही छोड़ दिया। पंद्रह सेर की आज्ञा होने पर भी एक एक आदमी के पास मन सवा मन बोझा होगा परंतु लोटा डोर कसम खाने के लिये नहीं। यदि किसी के पास कर्म संयोग से निकल भी आया तो कुइयाँ से पानी खैंचकर लाना और महाभारत जीतना बराबर। भला जिनको छुआ छूत का विचार है, जो वाजपेयी बन कर किसी को अपना पानी छुआने में नाक भौं सिकोड़ते हैं उनकी तो आज मौत ही समझो, परंतु जिन्हें इन बातों की पर्वाह नहीं है अथवा जिनके कान में मौत ने आकर कह दिया है कि या तो आज के लिये छुआ छूत छोड़ दो, नहीं तो कुत्ते की तरह मारे जाओगे, वे प्यास

से व्याकुल होकर यदि साहस के साथ पानी भरने के लिये दौड़े जाते हैं तो क्या हुआ? कुएँ पर कम से कम डेढ़ सौ आदमियों की भीड़ है। यदि चार चार छः छः आदमी आपस के मेल मिलाप से साथ साथ जल भरने का सिलसिला डाल लें तो थोड़ी देर में सब ही भर सकते हैं परंतु सब ही औरों से पहले भरना चाहते हैं, पहले भरने के लिये आपस में लड़ते हैं, मारते कूटते हैं और इसीलिये अभी तक सब रोते के रोते हैं। आपस की गाली गलौज, मार कूट, धक्का मुक्का और लात घूसों के साथ रोने चिल्लाने से और तो क्या—खासा जंग का मैदान दिखलाई देने लगा है। इस लड़ाई में यदि किसी का सिर फूट गया है तो कोई रोता जाता है और अपनी टाँग का खून पोंछता जाता है। कोई "हाय मरा रे! बेतरह मारा गया हूँ।" पुकार रहा है तो किसी के मूर्च्छा के मारे होश हवाश ठिकाने नहीं हैं।

जहाँ पानी के नाम पर आँसुओं की धाराएं बह रही हैं वहाँ खाने का ठिकाना कहाँ! जब सरकार की कृपा से, सुप्रबंध से हर एक स्टेशन पर घटिया बढ़िया सब तरह का खाना मिल जाता है और जब समय के प्रवाह ने मुसाफिरों के मन से खान पान की छुआ छूत उठा दी है तब लोग यहाँ तक बहादुरी लूटने लगे हैं कि ट्रेन में आराम से खाने की दुहाई देकर घर से भूखे आते हैं। इस लिये समझ लेना चाहिए कि यदि किसी के पास थोड़ा बहुत खाना है भी तो

वह विरला, किंतु एक तो स्टेशन हीं छोटा सा फिर यहाँ यदि खाना मिल भी सके तो कितना और दूसरे जो एक दो खोमचे वाले हैं वे अपने पास की ताजी तो क्या बासी कुसी पूरियाँ तक बेंचकर दिवालिए बन गए हैं। घी का तो उनके पास काम ही क्या। जब घी ढाई सेर की जगह ढाई पाव का बिकने लगा है तब घी की पूरियाँ! घी की पूरियों का तो सुपना देखो परंतु मामूली तेल की—यदि बहुत हुआ तो खोपरे के तेल की पूरियाँ बनाने के लिये न तो वहाँ तेल है और न कसम खाने के लिये आटा। बस इसलिये सब ही लोग चिल्ला रहे हैं कि—"आज मौत आगई।"

"इस हड़ताल से, राम जाने रेलवे के नौकरों का कुछ लाभ होगा या नहीं परंतु हम मुसाफिर तो बे मौत मारे जाँयगे।" जब बड़े बड़े लोगों को जो लंबे लंबे लेख लिखने और लेक्चर झाड़ने वाले हैं, इस तरह घबड़ा डाला है तब छोटे मोटों की क्या विसात! कोई रोता है, चिल्लाता है और हाय! हाय!! पुकारता है, तो कोई भूख के, प्यास के और धूप की तेजी के मारे बेहोश हो रहा है, सिसक रहा है। यदि किसी को हैजा हो गया है तो कोई लू लगने से व्याकुल है। चारों ओर से—"हाय! मरा! हाय मरी! अरे मेरे नन्हा! अरी मेरी लाली। हाय अब मैं क्या करूँगी! हाय मुझे कहाँ छोड़ चले? हाय मैं घर की रही न घाट की! हे प्राणनाथ अब मैं किसकी हो कर रहूँगी! हे भगवान मुझे भी मौत दे दे!" की

पुकार मच रही है तो ऐसा किसका पत्थर सा कलेजा है जो ऐसे समय में भी न पसीजे। इन मुसाफिरों में से कोई माई का लाल भी निकला। भूख और प्यास से, धूप और लू से व्याकुल होने पर भी उसने यों कुत्ते की मौत मरने से, अपने देशियों के, मनुष्य जाति के प्राण बचाने के लिये मर मिटना अच्छा समझा। एक मुसाफिर के पास से तलवार लेकर उसने म्यान से निकाली और कुएँ के इर्द गिर्द जो भीड़ थी उसे काई की तरह चीरता हुआ वह कुएँ पर जा खड़ा हुआ। खड़े होकर उसने ललकारा—

"खबरदार! कोई आपस में लड़े तो! मैं एकही झटके से दो टुकड़े कर डालूंगा। छः छः आदमी आओ और कुएँ से पानी भरकर चुपचाप चल दो। अगर किसी ने धक्का मुक्की की यदि किसी ने किसी को मारा पीटा अथवा जो किसी ने गाली गलौज की तो वह अपने को मरा ही समझ ले।"

बस इसके इस तरह ललकारते ही तुरंत रास्ता हो गया। चारों ओर से "शाबाश शाबाश!" और धन्यवाद धन्यवाद!" की पुकार मच गई। और इस तरह घंटे डेढ़ घंटे में सब मुसाफिरों के पास पीने के लिये पानी पहुँच गया। जिन लोगों के पास लोटा डोर था उन्होंने अपने हाथों से भर लिया और जो कोरे थे उनके लिये इस व्यक्ति ने उन्हीं मुसाफिरों में से चार आदमी खड़े करके स्टेशन वालों के तथा मुसाफिरों के डोल लेकर दिए और इस तरह पानी पहुँचाया।

"खरबूजे को देखकर खरबूजा रंग पकड़ता है।" इस एक व्यक्ति को परोपकार में प्रवृत्त होते देखकर दूसरे का भी मन पिघला। उसने लपके हुए तार घर में जाकर तार बाबू के हजार मना करने पर भी तुरंत ही ट्राफिक सुपरिंटेंडेंट को, ट्राफिक मैनेजर को और दूसरों को तार दिया—

"ट्रेने चलने के बंदोबस्त में अगर देर हो तो हो लेकिन यहां के हजार बारह सौ मुसाफिर भूख, प्यास, धूप और लू से मरे जाते हैं। हैजा फूट निकला है। जल्द बंदोबस्त कीजिए।"

केवल इतना ही करके उसे संतोष नहीं हुआ क्योंकि वह जानता था कि "इस तार को पाकर यदि कोई आया तो उसे आने में कम से कम तीन घंटे चाहिएँ। और यदि आनेवाला साथ में कुछ न लाया तो और भी मौत समझो। इसलिये तार देने पर भी उनके भरोसे पर चुप रहने के बदले उसने अपने भूखे पेट से लू की, धूप की, प्यास और गर्मी की कुछ पर्वाह न करके गाँव में जाने के लिये कमर कसी। स्टेशन से बाहर निकलते ही उसे सौभाग्य से जंगल में आवारा चरता हुआ एक टट्टू भी मिल गया। टट्टू मिला सही परंतु न तो उसके लगाम और न जीन। उसके पास गया तो वह मुंह से काटने और पैरों से दुलत्तियां झाड़ने लगा। "अब बड़ी मुशकिल हुई। प्रथम तो ढाई कोस जाना और इतनी दूर ही आना। पैदल चलने का अभ्यास नहीं। यदि टट्टू पर चढ़ता हूं तो शायद यह कहीं गढ़े में गिराकर जान ले डाले। अच्छे अच्छे बड़े बड़े

घोड़ों पर मैं अवश्य चढ़ा हूं परंतु ऐसे टट्टुओं से भगवान बचावे।" इस विचार से वह घबड़ाया और सो भी विशेष इस लिये कि—"आज मरना है और काम में सफलता होने से पहले।" परंतु इसके साहस बटोरते ही इसे तुरंत एक युक्ति सूझी। इसने टट्टू के पैर झाड़ से उलझा कर अपने साफे की उसके मुंह में डाठी बांधी। यह नंगी पीठ पर सवार हुआ और गिरने की कुछ पर्वाह न कर ज्योंही इसने दस बारह डंडे मारे टट्टू सीधा होकर लीक लीक दौड़ने लगा। टट्टू को दौड़ाते हुए पास के कस्बे में जाकर यह देखता क्या है कि हलवाइयों की दूकानें बंद हैं। बस्ती का कोई भला आदमी आज मर गया है। सब लोग उसकी मुर्दनी में गए हुए हैं। उस जगह कोई भाड़ भी नहीं जहां चने मिल सकें। ऐसी दशा देखकर यह घबड़ाया अवश्य परंतु निराश नहीं हुआ। बस्ती में चक्कर लगाते लगाते इसे एक मकान ऐसा दिखाई दिया जिसमें हाल ही किसी की शादी होने के निशान पाए गए। इधर उधर से पता लगा कर वह उस के भीतर गया और विवाह की बची हुई मिठाई, पूरी, कचौड़ी आदि जितना सामान इसे वहां से मिल सका इसने मुंह मांगे भाव पर खरीदा और इस तरह इसे पंद्रह बीस सेर भुने हुए चने भी मिल गए। चने उसी शादी में नौकरों के चबेने के लिये भुनवाए गए थे। ऐसे यह सारा सामान एक छकड़े में लदवा कर स्टेशन पर पहुँचा।

जिस समय खाने का छकड़ा पहुँचा एक इंजिन और

दो गाड़ियां लेकर एक स्पेशल भी वहां आ पहुँची। गाड़ी में जो दस बारह कुली सवार थे उन्होंने खाने के टोकरे उतारे और खडम खडम अपने बूटों को बजाते हुए आठ दस युरोपियन भी उतर पड़े। दोनों ओर से लड्डू, जलेबी, पूरी, कचौड़ी, चना, चबेना, जो कुछ मिल सका सब लोगों को बांट दिया गया, और बात की बात में सब के सब मुसाफिर खा पीकर उन दयावान् युरोपियनों को और उन दो देशी सज्जनों को आशीर्वाद दे दे कर धन्यवाद के पुल बाँधने लगे। उन साहब बहादुरों ने इन सज्जनों की बहुत कुछ प्रशंसा की बहुत बहुत धन्यवाद दिया और इनका नाम एक साहब ने अपनी नोटबुक में लिख लिया, जिसका परिणाम यह हुआ कि इन दोनों को गवर्नमेंट ने "कैसरहिंद" सोने के तमगे प्रदान किए।

जब खा पीकर सब लोग निपट चुके तो सब के सब झुंड के झुंड ट्रैफिक सुपरिंटेंडेंड के गिर्द आ लिपटे। "सरकार हमें जल्द पहुँचाइए।" "हम यहां बहुत कष्ट में हैं।" और "आपने जैसे हमारी जान बचाई है वैसे ही यहां से रवाना कर दो।" की चिल्लाहट मचाई। साहब ने सबको ढाढ़स दिया और सब ही अफसर गार्ड, ड्राइवर, फायरमैन, खलासी बन बन कर मुसाफिरों को गाड़ियों में सवार करा करा कर वहां से विदा हुए। उस समय उन्होंने

ऊँची तनख्वाह पाने का, ऊँचे दर्जे का बिलकुल खयाल न किया। और इस तरह उनका खूब जय जयकार हुआ।

परंतु उन मुसाफिरों को मारने से बचाने वाले, जल और अन्न देकर उनकी जान बचाने वाले वे दोनों सज्जन कौन थे? तलवार सूंत कर कुएँ के पास खड़े हो जाने वाले पंडित प्रियानाथ और कस्बे से मिठाई लानेवाला उनकी ही आज्ञा से उनका छोटाभाई कांतानाथ। कुएँ से डोल भर भर कर पानी बाँटने वाला बूढ़ा भगवान दास, उसकी स्त्री, उसका एक लड़का और इस जगह अपनी कोमल कलाइयों से जी तोड़ परिश्रम करनेवाली प्रियंवदा को यदि मैं भूल जाऊँ तो लोग मुझे कृतघ्न कहेंगे। उस बिचारी ने अपनी जान झोंक कर परिश्रम किया और दौड़ कर पानी पिलाने में खूब ही आशीर्वाद पाया।

यही पंडित जी की यात्रा का श्रीगणेश है।

प्रकरण — ८

आलसी भोला।

पंडित प्रियानाथ जी राजपुताने में कहीं के रहनेवाले थे। कहाँ के, सो बतलाने की आवश्यकता नहीं और यदि पाठक महाशयों की बहुत सी इच्छा हुई तो आगे चल कर देख लिया जायगा। हाँ! इतना अवश्य है कि गत प्रकरण में लिखी हुई घटना के अनंतर वे अपनी प्यारी प्रियंवदा और प्रिय बंधु कांतानाथ समेत सकुशल मथुरा पहुँच गए। इधर ये तीनों और उधर बूढ़ा भगवानदास, उसकी स्त्री और उसका बेटा, यों छः आदमियों की एक यात्रा पार्टी थी। पंडित जी के साथ एक कहार नौकर भी था। नाम उसका था भोला परंतु लोग कहा करते थे कि "इसका नाम भोला किस मूर्ख ने रख दिया? यह भोला नहीं। जो इसे भोला कहे सो भोला। यह पक्का घाघ है, बड़ा मतलबी है और कामचोर भी आला दर्जे का है।" इसके और गुणों का परिचय तो समय शायद पाठकों को दे तो देही सकता है किंतु कामचोरी की बानगी गत प्रकरण से प्रकट हो गई। बानगी यही कि जिस समय प्रायः सबही यात्री भूख, प्यास लू, गर्मी और धूप के मारे तड़प रहे थे, जब उसके मालिक मालकिन जी तोड़ परिश्रम कर रहे थे तब भोला चंडू के

नशे में चूर होकर एक खाली गाड़ी के नीचे पड़ा पड़ा खर्राटे भर रहा था। पंडित, पंडितायिन के हज़ार नाहीं करने पर भी इसने चंडू पिया, उनके परिश्रम की, कष्ट की और अपनी नौकरी की किंचित् भी पर्वाह न कर उसने चंडू पिया और सच पूछो तो उस समय का "गम गलत" करने के लिये पिया।

पिया तो पिया। उसका व्यसन था और पिया किंतु उसको भूख और प्यास से व्याकुल समझ कर जब पंडितायिन ने जगाया, पति के नाहीं करने पर भी उस पर दया करके खाने पीने को दिया तो खा पीकर फिर सो गया। फिर प्रियंवदा ने जल के छींटे देकर जगाया तो चुप, कांता भैया ने टाँग खैंच कर जगाया तो चुप और पंडित जी ने लात मार कर जगाया तो चुप। यदि बहुत ही दिक़ हुआ तो सोते सोते, करवट बदलते बदलते और आँखें मलते मलते इतना कह दिया कि—"साले यों ही सताते हैं। पियेंगे और हज़ार बार पियेंगे। जो मरते हैं उन्हें मरने दो। तुम्हें मरना हो तो तुम भी मरो। कल मरते सो आज ही क्यों न मर जाओ। पीते हैं, और गाँठ का पैसा काट कर पीते हैं। किसी ससुर का क्या पीते हैं?"—इस पर पंडित जी ने नाराज होकर उसे नौकरी से अलग भी कर देना चाहा क्योंकि काम का नाम लेते ही वह आँखें दिखला दिया करता था। एक बार पंडित जी के साथ कहीं दौरे पर गया था। पंडित जी ने कहा "अरे चिराग गुल कर दे" वह लिहाफ में लिपटा लिपटा बोला—

"लिहाफ से मुँह ढाँक लो" थोड़ी देर में पंडित जी ने पूछा—क्यों रे ? क्या मेह बरस रहा है ? जरा उठ कर देख लो कहीं कपड़े तो नहीं भीगते हैं ?" उसने जवाब दिया—"हाँ बरसता तो है। अभी बिल्ली भीगी हुई आई थी।" फिर पंडित जी बोले—"बरसता है तो जाकर कपड़े उठा।" वह बोला—"तड़के आप ही सूख जाँयगे।" तब पंडित जी ने कड़क कर कहा—"सूख कैसे जाँयगे। खराब हो जाँयगे।" उसने लिहाफ में से मुँह निकाले बिना ही धीरे से उत्तर दे दिया—"नुकसान से डरते हो तो इतना काम तुम ही कर लो।" आज की हरकत से पंडित जी को उसकी सब पुरानी बातें याद आ गईं। उन्होंने अपनी जेब में से निकाल कर एक दो, तीन, चार रुपये गिने। गिन कर उसकी जेब में डाले और तब यह कह कर—"यह खर्च ले। जब तेरी मौज हो अपने घर चले जाना। आज से ही तू मौकूफ! हमें ऐसा नौकर नहीं चाहिए। चला जा अपने घर और और जगह नौकरी टटोल।" वहाँ से चलने लगे। पंडित जी का सचमुच ही खरा खरा क्रोध देख कर उसकी निद्रा टूट गई। उसने लपक कर पहले पंडित जी के और जब उन्होंने झटका दिया तो पंडितायिन के पैर पकड़ लिए। हाथ जोड़ कर माथा टेक कर और चिरौरी करके क्षमा माँगी और आँखों से आसू बहा कर वह रोने लगा। पंडितायिन को उस पर दया आई और उसने भोला की शिफारिश करते हुए कहा—

"इस बार का अपराध इसका क्षमा कर दो। नहीं तो विचारा यात्रा विना रह जायगा। इस गरीब को यात्रा कहाँ ?

"क्यों ? क्या तेरा यह कुछ...जब देखो तब (जरा मुसकरा कर) इसे यों ही बचा देती है। (अपनी हँसी को होठों से दबाते हुए) कुछ दाल में......

"बस बस ! हर बार (तिउरियां चढ़ा कर आंखें मट-काती हुई) की दिल्लगी अच्छी नहीं होती। भाड़ में जाय यह और चूल्हे में जाय इसकी नौकरी। मैं तो इसे पीढ़ियों का नौकर समझ कर इस पर दया करती थी। तुम्हें बंद करना है तो कल करते आज ही कर दो। मुझे क्या गरज है ?"

"ओ हो ! जरा सी वात पर इतनी नाराज ? अच्छा तेरी इस पर इतनी कृपा है तो इसे बंद नहीं करेंगे। हां हां ! सच तो है यह तेरा नौकर है।"

"बस जी कह दिया ! एक बार नहीं सौ बार कह दिया। दिल्लगी मत करो। निगोड़ी ऐसी हँसी भी किस काम की ? तुम्हारी हँसी और मेरी मौत ! कोई जाने सच और कोई जाने झूठ ! और तुम्हें सचमुच ही संदेह हो तो वैसी कह दो ! पेट में मत रक्खो। साफ साफ कह डालो।"

"नहीं संदेह वंदेह का कुछ काम नहीं। यों हीं मज़ाक से कह दिया। तू नाराज होती है तो हम अब मज़ाक ही न करेंगे। हम हारे और तू जीती।"

"नहीं ! मज़ाक तो एक बार क्या सौ बार करो मज़ाक के बिना सब मज़ा ही किरकिरा हो जाय परंतु ऐसी हँसी नहीं।"

"ऐसी नहीं तो कैसी ?"

"हाँ हाँ ! ऐसी ! बस ऐसी। बहुत हो गया ! अच्छा मैं हारी ! ऐसी ! अजी ऐसी ?"

"बोल तू हारी या हम हारे ?"

"मैं हारी तो मैं तुम्हारी दासी और तुम हारे तो तुम मेरे साईस।"

"भला तो दोनों में से कौन ?"

"आपकी दासी, जन्म जन्मांतर की दासी।"

इस तरह कष्ट के समय भी हँसी दिल्लगी से जी बहलाने के अनंतर इन्होंने मथुरा का मार्ग लिया और वहाँ पहुँच कर बंदर चौबे के यहाँ डेरा किया।

यहां "बंदर" से मेरा मतलब लाल लाल मुँह के दुमदार मथुरिया बंदर से नहीं है। इस दुमदार बंदर ने पंडितायिन को कैसे छकाया सो लिखने के पूर्व मुझे यहाँ प्रियानाथ के पंडा बंदर चौबे का परिचय दे देना चाहिए। इन चौबेजी महाराज का नाम भी बंदर था और भंग के नशे में जब यह काम भी कभी कभी बंदर का सा कर डालते और उस समय यदि लोग इन्हें हँसते तो यह चट कह दिया करते थे कि

"यजमान या में कहा अनोखी बात भई ? हम बंदरन के

पुरखा और बंदर हमारे पुरखा! चौबे मरै सो बंदर होय और बंदर मरै सो चौबे!"

खैर! बंदर चौबे डील डौल में खासा बंदर जैसा था। आज कल का सा बंदर नहीं रामावतार का सा बंदर। उसके थाली के पेंदे जैसे गोल और विशाल चेहरे पर दाढ़ी और मोछ की कुछ कुछ बढ़ी हुई हजामत ऐसी मालूम होती थी मानों सूर्य के प्रकाश में दिन-मलिन चंद्रमा के खाई खंदक। उसके ललाट पर केसर की खौर देख कर यह कहने की इच्छा होती थी कि कहीं फीके चाँद पर रंगत चढ़ा कर रात की प्रदर्शिनी के लिये आज कल का कोई नवीन विज्ञानबाज नया चंद्रमा तो नहीं तैयार कर रहा है। उसके दोनों कंधों के मध्य भाग में उसका सिर ऐसा दीख पड़ता था जैसे पंसेरा लोटा उलट कर रख दिया हो। उसके सिर से अलग दीखने वाले दोनों कान मानो इस लोटे का भार सहने के लिये दो कुँडे थे और उसका मुँह पिचक पिचक जर्दा थूंकने के लिये नाली। इतने पर यदि किसी महाशय को नाक की उपमा ढूँढनी हो तो आज कल के किसी नामी कवि से जा पूछे। क्योंकि न तो मैं कवि ही हूँ और न कवियों का सा मेरा दिमाग। उसके मुख के, मस्तक के स्वरूप से पाठक अनुमान कर सकते हैं कि उसका शरीर कैसा विशाल, कैसा भारी और कैसा मोटा था।

हाथ में कान के बराबर ऊँचा बाँस का एक लट्ठ और बगल में एक बटुए के सिवाय वह अपने पास कुछ नहीं

रखता था। सिर पर एक दुपल्ली टोपी, कंधे पर एक अँगोछा और कमर में धोती रखने के सिवाय चाहे कैसा भी जाड़ा क्यों न पड़े मिरजई पहनने की कसम और जेठ की दुपहरी में धरती चाहे तत्ते तवे की सी गर्म क्यों न जल उठे जूता पहनने का काम ही क्या ? वह जब कभी बहुत गुस्से में आता तो अपनी चौबायिन को मारने के लिये अपना हाथ अपने पैर से जूता निकालने को नीचे की ओर दौड़ाता अवश्य परंतु जब श्रीमती—"हाँ ! हाँ !! मारो ! मारो !! भगवान ने दी हो तो मारो। जन्म को नंगो निगोड़ो जूता मारने चलो है। कभी बाप अमारे भी जूती पहनी है जो मारने के लिये हाथ फैलावै है। एक बेर जूती पहन तो सही। नसीब में लिखी हो तो जूती पहन।" कहती हुई हँस कर तालियाँ बजा देती और बंदर चौबे भी इस बात से प्रसन्न होकर मुँह बिचकाता हुआ वहाँ से नौ दो ग्यारह होता। मथुरा के दिल्लगीबाज लोग लुगाइयों को बंदर चौबे की हँसी करते देख कर इसकी धोती भी कभी कभी उनकी हँसी में गहरी हँसी बढ़ाने के लिये उसकी कमर का अड्डा छोड़ भागने का प्रयत्न करती रहती थी। प्रयत्न क्या ? कभी कभी भाग भी निकलती थी किंतु सरे बाजार इस तरह इसके कई बार दिगंबर हो जाने से जब लोगों ने इसका नाम ही नंगा रख लिया, "नंगा नंगा" कह कर बालक इसे चिढ़ाने लगे यहाँ तक कि इसकी धोती खैंच कर भागने लगे तब इसकी ढठोल धोती को शर्म आई

और तब ही से अपनी मथनी से पेट के नीचे वह धोती की एक दो गांठें देने लगा।

जैसे डील डौल में वंदर चौबे कुंभकरण होने का दावा करता था वैसे ही खाने में भी बड़ा बहादुर था। तीन चार सेर लडुआ, पाँच छः सेर खीर और ऊपर से सेर डेढ़ सेर जलेबी खाजाना इसके लिये कोई बड़ी बात न थी। क्योंकि "चूरन की जगह होती तो चार लडुआ ही क्यों न खाते ?" यह ऐसे ही लोगों का सिद्धांत था। जैसा इसका डील डौल था, जैसी इसकी खुराक थी वैसी ही इसमें ताकत भी थी। एक सांस में हजार दो हजार डंड खैंच लेना इसके लिये कोई बड़ी बात नहीं थी। पहले पहले इसने दो चार नामी नामी पहलवानों को कुस्ती में मारा भी था परंतु हिम्मत के नाम पर इसकी नानी मर जाती थी। जो दिन में पांच पंचों के सामने पहलवानी की बड़ी बड़ी डींगँ हाँकता वह घर में पहुँचते ही चौबायिन के आगे गैया सा गरीब बन आता था। वह जैसे नचाती वैसे ही नाचता और इस तरह उसका हुक्मी बंदा बना रहता था। हिंदुओं के घर में जितनी कुत्ते की कदर है उतनी ही उसकी थी। लुगाइयां यहां तक कहती थीं कि चौबा-यिन ने उस पर जादू कर दिया है।

अस्तु ! कुछ भी हो। पंडित प्रियानाथ जी ने जिस समय इसके मकान के आगे अपना तांगा खड़ा किया इसकी भंग छुन कर तैयार हो चुकी थी। इसने साफी धोकर भंग के लोटे

ढांके। ढांक कर ज्योंही इसने "दाऊ दयाल ब्रज के राजा और भंग पिये तो यहीं आजा।" की आवाज के बाद रंग लगा कर छूंछ हाथ में उठाई, उठा कर ज्योंहीं इसने—"लेना बे!!!" के गगनभेदी शब्द से अपनी कोठरी को गुँजा डाला त्यों ही बाहर से आवाज आई—"ए चौबेजी! अजी चौबेजी! किवाड़ा खोलो।" आवाज सुनते ही चौबायिन लंबा घूंघट ताने लपकी हुई आई। आकर—"छोड़ छोड़! भंग! निपूते जजमान आय गए। जब देखो तब भंग! भंग के सिवाय मानो कछु काम ही नांय है।" कहती हुई ज्यों ही इसके पास से भंग का लोटा छीनने लगी यह बोला—"भागवान भंग तो पी लेन दै। जज-मान आयो हैं तो मरने दै सारे को। कहा ऐसो जजमान है जो निहाल कर देगो! ऐसे ऐसे नित आमैं हैं और चले जामैं हैं।" उसने इसकी एक न सुनी। लोटा छीन कर एक ओर रक्खा और हाथ पकड़ कर आगे कर लिया। यह मन ही मन बड़बड़ाता, अपनी कुलकामिनी को गाली देता, उसकी ओर देख देख कर लाल लाल आंखें निकालता मकान के बाहर पहुँचा। इसने अपने सिर पर लाद कर सारा सामान अंदर लिया। पंडित प्रियानाथ जी को उनके योग्य और बूढ़े भग-वान दास को उसके योग्य स्थान दिया।

"महाराज, आप तो हमारे अन्नदाता हैं। हमारे लिये तो आप ही राजा करण हैं।" कह कर उनकी खुशामद की और जब सब तरह उनकी सेवा सुश्रुषा कर ली तब इस बिचारे

का कहीं भंग पीना नसीब हुआ। इसने बहुतेरा चाहा कि इस भंग में बादी भर गई है, दूसरी बनाई जाय परंतु चौबायिन की घुड़की से चुप।

प्रकरण—९

निरक्षर पंडा।

पंडित जी अपना और बूढ़े भगवान दास ने अपना सामान ठिकाने रक्खा। शरीर कृत्य से निवृत्त होकर सब ही विश्रांत घाट पर स्नान करने गए। गहरी दक्षिणा पाने की लालच से बंदर चौबे भी साथ। अच्छा हुआ जो चौबायिन की सलाह से ये लोग कपड़े, जेवर और जूते उतार कर अपने अपने डेरे में ही रख गए। इन्होंने कहा भी था कि "यहाँ छोड़ देने की क्या आवश्यकता है? भोला साथ है ही। वह सब की रखवाली कर लेगा।" परंतु चौबायिन ने बड़ी जिद्द की उसने स्पष्ट कह दिया कि "भोला कहा? भोला को बापहू सुरग सों उतर आवैं तो बंदर के आगे वाकी एक हू न चलने पावैगी। ये बंदर नहीं। निपूते बलाय हैं। पंडित जी को शायद अपनी उमर भर में नंगे पैरों, नंगे शरीर और नंगे सिर, केवल एक धोती पहने घर से बाहर निकलने का काम नहीं पड़ा था। इस लिये उन्होंने अपनी नाक भौं भी बहुत सिकोड़ी। वे झुंझलाए, शरमाए और इन्होंने आनाकानी भी कम न की। दंपति में परस्पर आँखों ही आँखों में हँसी मजाक भी कम न हुआ। वह दिल्लगी दिल से आँखों पर और आँखों से दौड़ कर होठों तक भी आ टकराई किंतु होठों के फाटक ने जब रास्ता न दिया तब भाग कर

आँखों में आ विराजी। इस तरह कभी हँसते, कभी मुसकुराते, कभी शरमाते और कभी अपनी अर्द्धांगिनी के कमल नयनों से अपने नेत्रों को उलझाते–कोई देख न ले–इस डर से छिपाते विश्रांत घाट पर पहुँच कर इन्होंने भगवती रविनंदनी यमुना को प्रणाम कर ज्योंही—

दोहा—"जमना जल अचमन करै, जमना जल में न्हाय।
जहाँ जहाँ जमना बहै, तहाँ, तहाँ जम नाँय॥

कवित्त—जर गयो रौरव, पजर गयो कुँभी पाक,
मारी परे दूत अब इन में दम नाँय रे।
सूखि गई सरिता वैतरणी नदी आदि ले,
कटि गई फाँसी जहाँ लाल खंभ नाँय रे।
चित्रगुप्त डूब्यो सिंधु कागज समीप ले,
तोकूँ तो कवि विलास पती गम नाँय रे।
धाम जमना है, जाको नाम जमना है,
औ जहाँ जमना है तहाँ जम नाँय रे।"

श्री जमुना जू या में कौन भलाई? (टेक)
नाम रूप गुण ले हरि जू को न्यारी आपनि चाल चलाई।
ऊजर देश कियो भ्राता को तुम परसत उत कोउ न जाई।
जे तन तजत तीर तेरे नर तात तरणि पर गैल चलाई।
मुक्ति बधू को करै दूतिपन अधमन हूँ सों आन मिलाई।
आपन श्याम आन उज्वल कर तात तपत निज सीतलताई।
जल को छल कर अनल अघन को ये सुन कर कोऊ न पत्याई।

यद्यपि पक्षपात पतितन को तदपि गदाधर प्रिय मन भाई।"
कहते हुए नदी में प्रवेश किया सीढ़ियों पर से आवाज आई—

"जजमान, गठजोरे तें ! आज गठजोरे तें स्नान करिबे को लेख है।"

"मैं तो अपना उत्तरीय ही मकान पर भूल आया।"

"भूलि आए तो चिंता कहा है ? मैं आती बिरियाँ बजार तें कपड़ा ले आयो हूँ।"

यह सुन कर पंडित जी ने कपड़ा लिया। कपड़ा और नहीं लाल टूल। देख कर उन्होंने बहुत नाक सिकोड़ा। "हिंदुओं के धर्म कर्म में भी विलायती कपड़ा ? देश का दुर्भाग्य !" कह कर उन्होंने अपने हाथ से उसे धोया। धोकर अपने कंधे पर डाला और उसका दूसरा छोर अपनी गृहिणी को देकर गठजोरा बाँधने का इशारा किया और तब हाथ में जल उठाकर यमुनाजी में खड़े खड़े बोले—

"हाँ ! संकल्प ! बोलिए। जरा उतावले ही, क्योंकि कछुओं का बड़ा भय है। कहीं नोच खाँय तो सारी यात्रा यहीं पूरी होजाय।"

"अरे सचमुच खाया। अजी मैं चली ! हाय लहू निकल आया ! ओहो ! लहू क्या माँस नोंच कर ले गया ! हाय डूबी ! अजी मुझे बचाओ। हाय डूबी।" कहकर ज्यों ही प्रियंवदा रोने और पानी में डुबक डुबक करने लगी पंडित जी ने उसका हाथ पकड़ कर उसे किनारे पर कर लिया।

सचमुच ही कछुआ जांघ का मांस नोच कर ले गया। घाव में से खून बहकर यमुना जल लाल हो गया और साथ ही प्रियंवदा बेहोश। आंखों पर जल छिड़कने और एक यात्री के पास से लेकर पंखा झलने पर जब उसे होश आया तब पंडित जी ने कहा—

"देखा तैने यात्रा का मजा! जब श्रीगणेश में ही यह दशा है तब आगे चलकर भगवान बचावै। क्यों भर गया ना पेट ऐसी यात्रा से? बोल। अब क्या कहती है?

"जो कुछ हुआ हमारे कर्मों का फल है। इसमें बिचारी यात्रा का क्या दोष? यात्रा करेंगे और घोर संकट सहकर भी अवश्य करेंगे।"

"शाबाश! (अपनी स्त्री से) शाबाश! ऐसा ही दृढ़ संकल्प चाहिए! मैं भी केवल टटोलता था! अच्छा! (बंदर चौबे से) अच्छा महाराज! बोलिए संकल्प! "कहकर फिर पंडित जी ने हाथ में जल उठाया। एक मिनट गया, दो गए, पाँच सात करते करते दस पंद्रह मिनट निकल गए परंतु चौबेजी चुप। अपने लट्ठ को यमुना जी में इधर उधर घुमाकर कछुआ अवश्य हांकते जा रहे हैं। अवश्य ही इस काम में चौबेजी मग्न हो रहे हैं किंतु संकल्प के नाम पर चुप! खैर! बंदर महाराज ने इधर उधर से साहस बटोरा। हिम्मत आई। पढ़ना तो जाय भाड़ चूल्हे में परंतु संकल्प याद न होने पर चौबेजी को कुछ लज्जा भी आई। शर्म

इसलिये आई की यजमान विद्वान् है और उससे बहुत कुछ पाने की आशा है। खैर जैसे तैसे हिम्मत करके चौबे जी बोले—

"अतराद्दे, अतराद्दे मासाना मास्ये। आज कल महीनों कौन सो है ? सारे महीने को नाम हू या बिरियाँ भूल गए ! अच्छो ! जेठ मास्ये, सुभे सुकल पच्छे, अपनो नाम गोत्तर उच्चारौं अपने बाप दादान को नावं, महारानी यमुना जी में गठजोरा ते स्नान करबे में, सौबेने को लडुआ, खीर और कचौड़ी जिमायबे ते, अपने पंडा को भरपूर दच्छना देबे में कड़ोर अस्समेद को पुन्न होय ! अच्छो जजमान अब रोरी अच्छत से यमुना जी की पूजा करो ! अब सेला, दुपट्टा, गहनो, गैया, घोड़ा, हाथी, नगद जो कछु चढ़ामनो होय भेट करो। और तब स्नान करो।"

"बस हो गया ! सारा कर्मकांड समाप्त हो गया ? अरे ऐसे लंठ ! इन्हीं ने मूर्ख रह कर हिंदुओं को डुबो दिया। राम राम ! ऐसे मूर्खराज और सो भी हमारे पुरोहित ! ऐसी यात्रा करने से तो घर बैठे रहना अच्छा। चौबे जी महाराज, आपको जो कुछ मिलना होगा सो मिल जायगा। किसी अच्छे कर्मकांडी पंडित को लाओ ना ?"

"हम कहा मूरख हैं जो पंडित को ढूंढ़ने के लिये झष मारते फिरैं ? तिहारे बाप दादा ऐसे ही संकलप करते करते मर गए और हमारे बाप दादा ऐसे ही सुफल बोलते बोलते ! आग लगै या अंगरेजी कूँ जाने दुनियाँ भरस्ट कर डारी।"

इतना कहकर चौबे जी जब अनाप सनाप गालियां बकने लगे तब घाट पर जो सैकड़ों ब्राह्मण, भिखारी लूले, लंगड़े, अंधे, अपाहज जमा हो रहे थे उनमें से किसी ने कहा—"संकल्पं कर्म मानसम्" और तुरंत ही पंडित जी ने उत्तर दिया— "कर्म मानसं—नहीं। कहनेवाला यदि पंडित हो तो वही आज से हमारा गुरु। उसी से सब कर्म करावेंगे। ऐसा मूर्ख पंड़ा हमें नहीं चाहिए।" सुनते ही वह भीड़ को चीरता हुआ वहां आ पहुँचा। पहुँच कर उसने कहा—

"कर्म तो आपकी इच्छा के अनुसार शास्त्र विधि से मैं कराने को तैयार हूं परंतु गुरु आप इन्हीं को मानिए। बिचारे ब्राह्मण की जीविका मारी जायगी। यह दुराशिष देगा।"

"यह दुराशिष देगा तो हम भी शाप देंगे। ऐसे कर्मभ्रष्ट की दुराशिष ही क्या? आप के घर में जब तक विद्या रहे तब तक आप और आपके बेटे पोते हमारे गुरु! इस स्थिर जिविका ने, पीढ़ियों के बंधन ने ही हमारे धर्म का, देश का नाश कर डाला। विलायत वाले अपने पास अटूट धन होने पर, पीढ़ियों की बपौती जीविका होने पर भी विद्या ग्रहण कर दीनों का, देश का उपकार करते हैं और हमारे यहां के धनाढ्य, जमींदार, पंडे, पुजारी, संत, महंत, तीर्थ गुरु, विद्या पढ़ने के बदले कुकर्म में पैसा उठा कर यजमानों को लूटते हैं, फिर यदि कोई तीर्थों पर श्रद्धा भी रखना चाहे तो कैसे रख सकता है?"

"ओहो ! बड़ो लंबो लेकचर दे डाल्यो ! खबरदार ! (उस नए ब्रह्मण से) तैने किसी काम के हाथ हूं लगायो तो ! अभी (लट्ठ दिखलाकर) या सों खोपड़ी न फोड़ डारूं तो मेरो नाम बंदर नहीं ! मोहे जेलखाने जाइवे में कछु डर नाहीं है ! कछू फांसी तो होयगी ही काहे को ? चार छः महीना काटि आमेंगे पर तेरो तो कल्याण ही समझ ! जो बरस छः महीना खटिया पर पड्यो पड्यो न मूतै तो मैं बंदर ही कहा ?"

"नहीं भैया ! मुझे तुम्हारा यजमान नहीं चाहिये। मैं तो परदेशी हूं। पेट भरने आया हूं। और (जमुनाजी की ओर इंगित करके) माई भिक्षा ही से पेट भर देती हैं। न कुछ लादना है और न पालना। न जोरू न जांता अल्ला मियां से नाता। फिर तुम्हारा पेट क्यों फोडूं !" कहकर जब वह नवागत चलने के लिये खड़ा हुआ तो बात बढ़ती और अपना विचार बिगड़ता देखकर पंडित जी बोले—

"चाहे कोई जाओ और चाहे कोई रहो। होगा वही जो मैंने कह दिया है। यदि कर्म करानेवाला कोई ब्राह्मण इस समय न मिले तो न सही। मैं भी तो ब्राह्मण हूं। स्वयं अपने हाथ से कर लूंगा। हां ! इतना हो सकता है कि यदि यह बंदर सचमुच बंदरपन न करे तो वह भी खाली हाथों न लौटेगा।"

पंडित जी के पिछले शब्दों ने बंदर के मन पर कुछ असर

किया। वह "अच्छा यजमान"-कह कर बैठ गया। नवागत ब्राह्मण का नाम विष्णुगोविंद गौडबोले था। उसी ने स्नान दानादि कराए। गठजोरे से स्नान कर जब दंपति बाहर निकले तो सूखे वस्त्र पहनने की फिक्र हुई। पंडित जी की धोती मिली, कांतानाथ की मिली किंतु प्रियंवदा का पीतांबर गायब। भोला कहार में चाहे हजार ऐब हो परंतु वह चोर नहीं था। मालिक के नुकसान होने के डर से नहीं, मालिकिन के कष्ट पाने से नहीं किंतु "चोरी लगेगी" के भय से भोला घबड़ा उठा। "हैं बंदर ले भागा! हैं बंदर! वह देखो कदंब की डाली पर बंदर हाय हाय! पीतांबर फाड़ रहा है! दौड़ो! दौड़ो!!" की चिल्लाहट चारों ओर से मच गई। बिचारा बंदर इस समय काम आया। यजमान को प्रसन्न करने के लिये अथवा यों कहो कि उसका उपकार करने के लिये वह दौड़ा हुआ बाजार में गया, परंतु बाजार से बंदर के लिये लड्डू जलेबी लाना कोई एक मिनट का काम नहीं। लाभ जल्दी हो तब भी कम से कम पंद्रह बीस मिनट चाहिएँ। पंडित जी ने प्रियंवदा को अपनी धोती पहना देने के लिये हठ भी बहुत किया किंतु "सुहागिन नारी धुली धोती नहीं पहना करती हैं। श्वेत वस्त्र पहनना उनके लिये गाली है।" कहकर उसने पति को चुप कर दिया।

चुप अवश्य कर दिया किंतु इस समय इस रमणी की दशा बड़ी विचित्र थी। एक ओर जेठ का महीना होने पर भी जाड़े

के मारे जब यह केले के पत्र की तरह काँप रही थी तब दूसरी ओर लाज निगोड़ी इसे अलग ही मारे डालती थी। प्रथम तो इसकी धोती ही बारीक और फिर पानी से भीगने से और भी बारीक होकर इसके शरीर से चिपट गई। लाज के मारे यह अवश्य मरी जाती है और इसलिये चाहती है कि "यदि धरती माता अभी रास्ता दे दें तो उसमें समा जाऊँ"। यह अपनी लज्जा बचाने के लिये वहाँ से भाग कर कहीं जा छिपने का प्रयत्न भी करना चाहती है परंतु भीड़ के मारे इसके लिये एक पैंड भी बढ़ना कठिन। यह अपने मन ही मन में ऐसे खुले और मर्दाने घाट पर स्नान करने का दोष देकर पति पर नाराज भी होती है परंतु अब पछताने से लाभ ही क्या? इसने बारीक मलमल पहनने पर अपने को कोसा भी बहुत और आगे से बारीक और विलायती कपड़ा न पहन कर देशी मोटा कपड़ा पहनने की क़सम भी खाई। बस इसी तरह के उधेड़ बुन में पड़ी हुई जब यह अपनी गीली धोती को इधर उधर से खैंच कर अपना शरीर ढाँकती जाती है, ढाँकते हुए पैर के अँगूठे से धरती खोदती हुई मानो छिप जाने के लिये रास्ता ढूँढ रही है उसी समय भीड़ में से किसी ने—

कविवर बिहारी लाल की सतसई का एक दोहा कह कर अवाज़ा फेंक ही तो दिया। बिचारी की ऐसी विपत्ति के एक समय उसके कोमल कलेजे को कुचल डालने में उस मनुष्य

का क्या मतलब था, वह इसका कोई परिचित था अथवा दोनों ही दोनों को नहीं जानते थे, सो समय ही शायद बतलावे तो बतलावे।

ऐसा फबता हुआ अवाजा सुनकर प्रियंवदा बस ऐसी हो गई कि काटो तो खून नहीं। उस समय उसकी प्राणनाथ से चार नजरें अवश्य हो गईं। आँखों ही आँखों में इनकी परस्पर क्या बातें हुईं सो कहने का इस उपन्यास लेखक को अधिकार नही है। इतने ही असें में बंदर चौबे बंदर से छुड़ाकर पीतांबर ले आया। इनाम में इसने अपनी अँगुली से अँगूठी निकाल कर चौबे जी को दी और "यमुना मैया तिहारो भलो करै" का आशीर्वाद लेकर इसने पीतांबर पहना।

इस तरह अँगूठी निकाल कर देने से, पितांबर पहनने से और साथ ही इन लोगों के मुख कमल की शोभा से उस घाट पर जो लोग बैठे हुए थे उन्होंने समझ लिया कि "यात्री कोई लखपती करोड़पती अथवा राजा महाराजा है।" बस इसी लिये जब ये सूखे कपड़े पहनकर चलने लगे तो कोई दो सौ आदमियों ने चारों ओर से इनको घेर लिया। जजमान बड़ा दानी है! बड़ा मालदार है!" की खबर सुनकर बहुत से ब्राह्मण भिखारी विश्रांत की ओर उमड़ आए। समय दुपहरी का था। ऐसे समय में दस पाँच आदमियों के सिवाय घाट खाली रहा करता था किंतु आज भारी यजमान का नाम

सुनकर उस जगह मेला लग गया। इतने आदमी इकट्ठे हो गए जितने सायंकाल को यमुना महारानी के आरती के समय भी इकट्ठे नहीं होते होंगे। एक दम चारों ओर से— "जजमान हमारी दच्छना! हम कितनी देरी से तिहारे लिये आस लगाए बैठे हैं।" का शोर गुल मच गया। कोई गा गा कर कहने लगा—"भोरी भोरी सी माय चौबेन कूँ लड़वा खवाय जैयो।" तो किसी ने धक्के मुक्के से भीड़ को चीर कर दंपति का मार्ग रोकते हुए हाथ फैलाकर—हम ब्रज-बासीन को हू कछू दिये जाओ।" की आवाज लगाई। किसी ने पंडित जी का हाथ पकड़ा तो किसी ने उनका पैर। कोई पंडिताइन की धोती पकड़ने लगा तो किसी ने उसके आगे लट्ठ ही इस तरह फैला दिया कि वह आगे न बढ़ने पावे। कोई पंडित जी की अंटी में से रुपए पैसे निकालने का उद्योग करने लगा तो किसी ने उनके कंधे का दुपट्टा ही खेंच लिया। गरज यह कि ये दोनों, इनका भाई, और उनके संगी साथी एक दम व्याकुल हो उठे। थोड़ी देर तक सब के सब अपनी सुध बुध भूल गए। किसी को कुछ भी न सूझा कि किस तरह इन भिखारियों की भीड़ से छुटकारा हो। इन्होंने अपने पास से निकाल कर ज्यों ज्यों दिया त्यों त्यों माँगने वाले इन्हें अधिक अधिक घेरने लगे। पंडित जी के साथियों में से यदि औरों के साथ एक एक के लिये पचास पचास आदमी होंगे तो इस जोड़ी के इर्द गिर्द दो सौ से

कम न कहना चाहिए। कुछ श्रद्धा और कुछ जोरावरी से, इन लोगों के पास जो कुछ था सब कुछ उन्होंने छीन लिया। उनके कपड़े फट गए। भिखमंगों की खैंचा तान से, हाथ पैर पकड़ने, मसकने और दबाने से शरीर छिन्न भिन्न हो गया और लहू लुहान हो गया। सब की आँखों में आँसू निकल पड़े। पंडित जी ने साहस बटोर कर पुलिस को भी पुकारा परंतु इनके शोर गुल के मारे जब कान पड़ी बात ही नहीं सुनी जाती थी तब कहाँ नक्कारखाने में तूती की आवाज़। औरों ने तो इस विपत्ति को जैसे तैसे रो धो कर सहा भी परंतु इधर प्रियंवदा मूर्च्छित हो पड़ी तब उधर बूढ़ा भगवान दास और उसकी स्त्री मरने के लिये जोर जोर से साँस लेने लगे।

बस इस तरह तीन आदमियों के गिरते ही भिखमंगो को चिंता हुई कि कहीं पकड़े जाँयगे। चिंता क्या कोरी मोरी ही थी। एक आदमी चार पाँच काँस्टेबलों को लेकर वहाँ आ पहुँचा। उनकी सूरत देखते ही तुरंत भीड़ काई सी फट गई। एक दो और तीन मिनट में भीड़ के भिखमंगे भाग कर तितर बितर हो गये। तीनों को पंखा झलने से, आँखों पर पानी छिड़कने से और इस तरह के अनेक उपचार करने से होश आया। और सब के सब पुलिस को धन्यवाद देते उस आदमी की प्रशंसा करते करते अपने डेरे पर पहुँचे।

उस आदमी की प्रशंसा इन लोगों ने अवश्य ही की परंतु प्रशंसा सुनने के लिये वह वहाँ खड़ा न रहा। पुलिस को दूर

ही से वहाँ का दृश्य दिखाकर वह एकाएक चंपत हुआ। इस यात्रा पार्टी में केवल एक के सिवाय किसी ने उस को देखा तक नहीं। देखा किसने ? प्रियंवदा ने। दूर ही से उसे देखकर इसके मन में न मालूम कैसा भाव उत्पन्न हुआ सो भगवान जाने क्योंकि एक अबला रमणी के मन की थाह बलवान विधाता भी नहीं पा सकता। प्रियंवदा को अवाजा सुनाने वाला और इनकी रक्षा के लिये पुलिस को लानेवाला ये दोनों एक ही व्यक्ति थे अथवा अलग ? इसका उत्तर अभी तक होनहार की गोद में है। समय ही इसे प्रकाशित करेगा।

अस्तु ! और तो जो कुछ होना था सो हो गया किंतु बंदर चौबे की क्या गति हुई ? वह साढ़े तीन हाथ का मोटा मुसंडा आदमी होने पर भी सचमुच अपने नाम को सार्थक करने के लिये दुमदार बंदर बन गया। दुमदार बंदर जैसे छीना झपटी से खा पीकर डंडे के डर से डाली पर जा छिपते हैं वैसे ही यह भी अपने यजमान से दक्षिणा पाकर जिस समय उन पर चारों ओर से गालियों के ओले बरसने लगे थे जिस समय उनके लिये "यह कहा देगो ? सारो भिखारी ? अरे दलद्दर है ? मुडचिरा है ! नास्तिक है ! इसका सत्यानाश अइयो ! हम गरीबन को आस ही आस में याने इतनी बिरियाँ बिठला रक्खा।" के अवाजे फेंके जा रहे थे यह भागकर अपने घर आया और वहाँ पहुँच कर रजाई ओढ़े पड़ रहा। चौबा-यिन ने इससे बहुत खोद खोद कर पूछा। उसने—"कहा

आयो ? जजमान कहाँ रहे ?" आदि सवाल पर सवाल कर डाले परंतु इसने—"जैसो उन्ने कियो तैसो पायो! हमारो सराप, अवरथा थोड़ो ही जायगो।" के सिवाय कुछ नहीं कहा। और जब इन लोगों के घर में आजाने की आवाज आई मूड़ मूड़ नींद के खर्राटे भरने लगा।

प्रकरण—१०

बंदर चौबे और उनकी गृहिणी।

गत प्रकरण में लिखी हुई विश्रांत घाट की घटना के अनंतर खाने पीने से छुट्टी पाकर जब हमारे यात्रियों को विश्राम पाने का अवसर मिला तब इन्हें इस बात पर अपनी अपनी राय देना सूझ पड़ा। एक ने कहा—"मैं तो मर ही चुकी थी। मरने में कसर ही क्या थी?"—दूसरा बोला—"जब धक्का खाकर मैं धरती पर पड़ा तो सैकड़ों आदमी मुझे कुचलते हुए इधर से उधर और उधर से इधर निकल गए। अभी नसीब में—बुढ़ापे में फिर कुछ दुःख सुख देखना बदा है बस इसी लिये भगवान ने बचाया।" तीसरा बोली—"मेरे ऊपर तो एक नहीं तीन—आपदा पर आपदा—तीन बार आपदा आई। इससे तो निपूता कछुआ ही खैंच ले जाता तो आज इतनी फजीती तो न होती। लाज के मारे मरी सो तो मरी ही परंतु फिर जान पर आ बनी। यह देखो मेरा शरीर जगह जगह से छिल गया है। यदि यह (अपने पति की ओर इशारा करके) मुझे न थाम लेते तो मेरा अवश्य चकना चूर हो जाता।" चौथा और पाँचवाँ दोनों एक साथ बोल उठे—"हम अपनी क्या कहें जब इनकी ही ऐसी दुर्दशा हुई तो हम बिचारे किस गिनती में, परंतु हाँ! आज की कसम उमर भर याद

रहेगी। बुढ़ापे में सालेगी।" तब पंडित जी कहने लगे—"बेशक आज एक न एक की अवश्य मौत हो जाती। भगवान ने ही बचाया। मेरा शरीर भी बिलकुल जर्जर हो गया है। यदि मैं थोड़ा भी कड़ा न पड़ जाऊँ, यदि मैं लातों और घूँसों से उस भीड़ को न हटाऊँ तो आज मेरा बदन कौड़ियों का थैला हो जाता। आज मरने में कसर नहीं थी।" इस तरह सब की रिपोर्ट पेश हो जाने के साथ ही सब ही की सेक पट्टी की गई। भोला कहार अवश्य ही इस मार पीट से; इस खैंच तान से बच गया था क्योंकि जिस समय घाट पर धक्का मुक्की होने लगी वह भाग कर डेरे पर चला आया था। वहाँ आकर पहले वह खूब सोया और फिर मालिक मालिकिन के आने से पहले ही बाज़ार की सैर देखने और खाने पीने चला गया था।

रात्रि के आठ बजे खा पीकर पेट पर हाथ फेरता और लंबी लंबी डकारें लेता जब वह वापिस आया तो उसकी सूरत देखते ही पंडित जी का क्रोध भड़क उठा। उन्होंने गुस्से में आकर उसके थप्पड़ भी जमाए परंतु-"नौकर को मारना अच्छा नहीं। वह सामने हो जावे तो अपनी बात बिगड़ जाय।" कह कर प्रियंवदा ने उसे बचा दिया। सब के सब थके माँदे तो थे ही सेक पट्टी से विश्राम मिलने पर सो गए तो पति के चरण चाँपते समय प्रियंवदा की प्राणनाथ से इस तरह बातें होने लगीं—

"क्यों अब तो यात्रा करने से पेट भर गया ना ? अब भी समय है। घर लौट चलें तो कैसा ? "

"हाँ ! अब तो मैं घबड़ा उठी। क्या आज की सी दुर्दशा हर एक तीर्थ पर होगी ? यदि ऐसा ही है तो लौट चलना ही अच्छा है।"

"ऐसी ही ! इससे भी बढ़कर ! यहाँ तो केवल इतने ही में पिंड छूट गया किंतु और जगह ठग मिलेंगे, उठाईगीरे मिलेंगे, जेबतराश मिलेंगे। खून हो पड़ता है। व्यभिचार हो सकता है। भेड़ की खाल में भेड़िये बनकर साधु मिलते हैं और ऐसे ही लोगों की, नहीं नहीं ! नराधमों की, राक्षसों की, बदौलत जो तीर्थ का एक दिन भगवान के दर्शन होने के लिये खुला हुआ मार्ग था, जहाँ ऋषि महर्षि इकट्ठे होकर उपदेश से लोगों का उद्धार करते थे, जो मोक्ष प्राप्ति का एक मुख्य साधन था वह अब बदमाशों का, हाय मैं अपनी जबान से क्या कहूँ ?, एक अड्डा बनता जाता है।'

"तब तो इसमें तीर्थों का दोष नहीं है, मंदिर वेही, क्षेत्र वेही हैं और धाम वेही किंतु उस समय के से मनुष्य नहीं हैं। दुनिया झुकती है झुकानेवाला चाहिए। यदि आप उद्योग करेंगे तो शायद लोग कुछ कुछ ठिकाने आ सकते हैं।"

"केवल मेरे ही प्रयत्न से क्या हो सकता है ? समुद्र में एक बूँद ! परंतु फिर भी लोगों को असली स्वरूप दिखला देना चाहिए। इसीलिये यह यात्रा है।"

"केवल इसीलिये नहीं। यह तो कर्तव्य है ही और अवश्य कीजिए परंतु जब आप गया श्राद्ध के लिये निकले हैं तब हज़ार संकट पड़ने पर भी इस काम को श्रद्धा के साथ कीजिए। इसमें धर्म का धर्म और कर्म का कर्म दोनों हैं।"

"करेंगे तो श्रद्धा के साथ ही किंतु ऐसे दुष्टों के आगे कहीं श्रद्धा का खून न हो जाय, भय इतना ही है।"

"जब आप जैसे दृढ़ संकल्प काम करने चले हैं पार ही उतरेंगे।"

"हाँ! परमेश्वर का भरोसा तो ऐसा ही है और इस प्रकार के कष्टों से बचने का उपाय भी सोच लिया है। इससे थोड़ा खर्च अधिक होगा। साथ उसी ब्राह्मण को ले चलेंगे। अच्छा कर्मकांडी है। पंडों का हक पंडों को मिल जायगा। बस इतना ही बहुत है।"

"हाँ! बिचार तो ठीक है। परंतु क्यों जी आज कराहते क्यों हो? क्या डील कसकता है? हाय मेरे प्राण बचाने में तुम्हारी यह दशा हुई! मुझे मरने ही दिया होता तो कौन सी दुनियाँ सूनी हो जाती! औरत पैर की जूती है। एक टूटी और दूसरी पहन ली!"

"जूती नहीं अर्द्धांगिनी! तेरे बिना आधा अंग रह जाता! लकवा मार जाता! और (कुछ मुसकुरा कर) 'कर्म का कर्म' कैसे होता?"

"क्यों फिर मसखरी! (आँखों ही आँखों में हँसते हुए)

दूसरी शादी कर लेते ! पर क्यों जी ? मर्दों को इतनी स्वतंत्रता क्यों ? बिचारी औरतों ने शास्त्र बनानेवालों का क्या बाप मारा था ?"

"नहीं ! मुझे दूसरी शादी नहीं चाहिये। परमेश्वर करे तू प्रसन्न रहे। मैं इसी में प्रसन्न हूँ !"

"अच्छा ! परंतु मेरे सवाल का जवाब क्यों नहीं दिया ?"

"खैर ! तब न सही तो अब सही ! अब तो स्त्रियों को एक नहीं अनेक पति करने का अधिकार है ना ? एक मरा और दूसरा ! दूसरा मरा और तीसरा ! और पति के जीते जी भी दूसरा कर ले तो क्या हर्ज है ? कुम्हार की हंड़िया की तरह ! क्यों तुझे भी यह बात पसंद है ना ?"

"गाज पड़े (कुछ रूठ कर) इस पसंद पर ! मुझ से ऐसी बातें मत करो। मेरी भुआजी ने ताऊजी को ("सुशीला विधवा" में) इसका ऐसा बढ़िया जवाब दे दिया कि उन्हें हार कर कायल हो जाना पड़ा। क्षमा करो। मैं ऐसी बातें सुनना भी नहीं चाहती।"

"हाँ ! बेशक जवाब तो खूब दाँत तोड़ दिया परंतु मुझ से तेरे संतान भी तो नहीं होती !"

"आग लगे ऐसी संतान के ! ऐसे बेटे बेटी से मैं बाँझ ही अच्छी हूँ। क्या बेटे बेटी के लिये मैं कसब कमाती फिरूँ ?"

"नहीं ! कसब नहीं ! दूसरा विवाह !"

"वह विवाह नहीं मेरी समझ में तो व्यभिचार है। जो हिंदू समाज में विधवा विवाह अथवा तलाक का प्रचार करना चाहते हैं वे दंपति के प्रेम पर, जन्म जन्माँतर के साथ पर, पवित्र सतीत्व पर और यों हिंदू धर्म पर वज्र मारना चाहते हैं। यदि भगवान न करें, ऐसी प्रथा चल पड़े तो अनेक नारियाँ दूसरा खसम करने के लिये अपने पति को जहर दे देंगी। पति पत्नी के सैकड़ों मुकद्मे अदालत की सीढ़ियाँ चढ़ने लगेंगे और आज कल का हिंदू समाज, हिंदू समाज न रहेगा। पति पत्नी का अलौकिक प्रेम नष्ट भ्रष्ट हो जायगा। इस गए बीते जमाने में भी हिंदू समाज ही एक ऐसा समाज है जिस में हजार रोकने पर भी ऐसी सतियाँ निकलतीं हैं जो पति का परलोक होते ही दूसरे के पलंग पर चढ़ने के बदले प्राणनाथ की चिता पर जल मरने में अपना गौरव समझती हैं और यदि समय उन्हें रोके तो मेरी भुआ की तरह अजीवन विधवा धर्म का पालन करती हैं। लाख तलाक देने वाली और करोड़ दूसरा खसम करने वाली से ऐसी एक ही अच्छी है। ऐसे ही रमणी रत्नों से समाज का मुख उज्वल है।"

"हाँ! सत्य है! यथार्थ है! बेशक ऐसा ही चाहिए! परंतु आज तो बड़ा भारी लेकचर फटकार डाला। वाह पंडित जी! शाबाश!"

"पंडित जी नहीं! पंडितायिन! पर इस शाबाशी का इनाम? कुछ इनाम भी तो मिलना चाहिए!!"

"इनाम क्या ? यह शरीर हाजिर है ! यह मन हाजिर है और सर्वस्व हाजिर है ;!"

"मह तो मेरा है ही ! मैंने अपना देकर अपना लिया ।"

"हाँ ! बेशक ! एक बार दासी बन कर तैंने जन्म भर के लिये मुझे अपना दास बना लिया ।"

"केवल जन्म भर से ही छुटकारा न होगा । जन्मजन्मांतर के लिये ! अनेक जन्मों के लिये ! 'जेहिं जोनि जन्महुँ कर्म वश तहँ राम पद अनुरागहूँ ।' परंतु आप को दास नहीं बनाया है । अपना स्वामी ! प्राणनाथ ! हृदयेश्वर ! जीवन सर्मस्व !'

"भगवान इसका निर्वाह करे !"

"अवश्य निर्वाह करेगा । भरोसा है, करेगा ।

"हाँ करेगा । करना ही चाहिए ।" कहते कहते दोनों को निद्रा देवी ने धर दबाया । दिन के थके माँदे तो थे ही । पड़ते ही नींद आ गई और ऐसी निद्रा आई कि जब तक बंदर चौवे की कागावासी छुनने का समय न आया ये दोनों गहरी नींद में खूब खर्राटे भरते रहे ।

भोर ही उठ कर बंदर चौवे ने सिलौटी सँभाली । उस पर भंग, मिरच्च, सौंफ, बादाम, और मसाला डालकर पीसना आरंभ किया । वह भंग भवानी की आराधना में, खूब लड़ा लड़ा कर, सिलौटी के राग में अपनी तान मिला कर इस तरह गाने लगा—

"भंग रंग में चंग सदा दुख द्वंद्व दूर हो जाते हैं ।
सात द्वीप नव खंड तमाशा पलंग पड़े दरसाते हैं ॥
ब्रह्मा, रुद्र, विष्णू, गणेश, देवी का ध्यान लगाते हैं ।
विजया माता वल प्रताप तें फूले नहीं समाते हैं ॥
भोजन कूँ अति रुचि बाढ़त हैं, नींद मस्त सो जाते हैं ।
इसी नशे के बीच यार हम ब्रह्म लोक दिख आते हैं ॥
जो विजया की निंदा करते, नरक बास सो पाते हैं ।
गोपी* भोग मोक्ष की दाता पातक सकल नसाते हैं ॥

गंग भंग दोउ बहन हैं रहतीं शिव के संग ।
तरन तारनी गंग हैं लडुआ खानी भंग ॥

कहें भवानी सुन बंभोले विजया मत देव गँवारन को ।
बालक पी खिल खिल्ल हँसे अरु वृद्ध पियें झख मारन को ॥
ज्वान पियें सौ वर्ष जियें सेर दो एक नाज बिगारन को ।
सौभाग्यवती पिये संग पती रति लाभ, अकाज सुधारन को ॥
वृद्धा जो पिये गृद्धा सी लगै श्रद्धा विश्वास बिगारन को ।
पुरुषोत्तम † हरि नाम बड़ो भवसागर पार उतारन को ॥

जब ऐसे ऐसे अनेक भजन वह गा चुका तब उसने पीस छान कर रंग लगा लिया। जब भंग की छूँछ हाथ में लेकर वह "लेना हो ! लेना वे......" की आवाज मार चुका तब उसने—"घोटे छाने और रंग लगावें और तो भी साले भँगड़ी

---

* पंडित गोपीनाथ जी (फतेसिंह जी) रचित

† पंडित पुरुषोत्तमलालजी रचित

बतावैं—" का एक आवाज फेंका दोनों के दोनों एक दम जाग उठे। जागते ही पंडित जी बोले—

"जैसा मनुष्य का मन ऐसे दुर्व्यसनों में लगता है, जैसा अभी यह अपना मन भंग पीसने में लागकर सिल लोढ़ी की तान और अपने राग में तल्लीन हो गया था और इस समय समा बँधकर इसे दीन दुनियाँ की सुधी नहीं रही वैसे ही मनुष्य भगवान में मन लगावे तो उद्धार होने में संदेह ही क्या? महात्मा कबीर जी ने ठीक कहा है—

'मनका फेरत जग मुआ गया न मन का फेर,
कर का मनका छाँड कर मन का मनका फेर।'

हजार वर्ष तक माला फेरने से क्या? समस्त जप तप से, जन्म भर खाक रमाने का, माला फेरते फेरते मनका घिस डालने का परिणाम यही। यदि एक मिनट भी इस तरह परमेश्वर के चरणों में अपना मन लीन होकर अपनी सुधि बुद्धि जाती रहे तो होगया काम! सब जप और तप, तीर्थ और पूजा, सब ही इसके साधन हैं। भगवान् दत्तात्रेय जी के गुरु कंडारे की तरह यदि अपने काम में मग्न होकर उसे राजा की सवारी की खबर न रहे, यदि उसके कान बाजे गाजे की आवाज तक न सुनें तो बस समझ लो कि काम हो गया।"

"हाँ सत्य है! भक्ति और पातिव्रत एक ही से हैं। पूजा और तीर्थ उसके उपाय हैं। केवल अनन्यता चाहिए।"

"अनन्यता ही भक्ति का फाटक है। परंतु चाहिए अनन्यता।"

"अनन्यता अभ्यास से आती है।"

"बेशक!" कहकर ज्यों ही पंडित जी ने प्रातःस्मरण आरंभ किया और ज्यों ही प्रियंवदा प्राणनाथ के चरण धोने लगी एकाएक इनके कानों पर "हैं! ससुरी! और अरे निपूते" की आवाज आई। "हैं! हैं! क्या मामला है!" कहकर दोनों के कान खड़े हो गए। इन्होंने इस तरह सुना—

"खाने की बिरियाँ तो पाँच सेर चाहिए। एक हूँ रोटी कमती दई तो तू लातों से खबर लेबे कूँ तैयार और काम की बिरियाँ निगोड़ो आँख दिखावै है? तू जजमान के पास जाकर वाकूँ राजी नहीं करैगो तो खायगो कहाँ? पथरा! कहा तेरे बदले मैं जाऊँगी? तू ओढ़नी ओढ़ कर घर में पड़ो रहै तो यह हूँ सही!

"सबेरे ही सबेरे लगाई किटकिट! राँड हत्यारी! नहीं जामैंगे। तेरे कहा बाप के नौकर हैं जो तेरे कहबे ते जामैं? हमारी मौज है गए। मौज आई न गए! तू लँहगो पहन या पगड़ी पहन! आज हम न जामैंगे। तेरी जिद पर न जामैंगे। तू तो कहा तेरो बाप हूँ सुरग तें उतर आवै तो न जामैंगे। हम न जामैंगे तू हमारो कहा करैगी? बोल कहा करैगी? हम कहा तेरे गुलाम हैं? जो सदा तेरो ही कह्यो कियो करैं?"

" हैं ! मेरे बाप के सामने ? मैं कहा करूँगी ? मैं झाड़ू मार कर निकास दूँगी ।"

" अच्छा मार ! देखें कैसे मारे है ? " कहकर इधर चौबे जी ने सोटा टटोला और उधर चौबायिन ने झाड़ू । सोटा मिला नहीं । चौबायिन बड़ी होशियार थी । वह जानती थी कि "निपूता कहीं सिर न फोड़ डाले ।" इसलिये जब पति से लड़ने को चली उसने लट्ठ पहले ही से छिपा दिया था किंतु प्रातः काल का समय था । घर में बुहारी देने के लिये झाड़ू उसके पास था । बस उसी से एक दो नहीं पाँच सात जमा दी । झाड़ू की मार खाकर धूल झाड़ते हुए चौबेजी उठे और–"अच्छा भागवान् जामैंगे !" कहते कहते खड़े होकर उसके आगे हो गए । आगे उस तरह नहीं हुए जैसे विवाह के समय भाँवरी फिरती बार आगे होते हैं, किंतु मार के मारे आगे हुए और मन ही मन चौबायिन को कोसते हुए इन्होंने पंडित प्रियानाथ के सामने खड़े होकर—"जय जमुना मैया की !" जा की...... ।" "ओ हो ! आज प्रातःस्मरण में बहुत विघ्न पड़े !" कहकर ज्यों ही पंडित जी की पंडितायिन से चार नजरें हुई चौबेजी की पूजा को याद करके दोनों आँखों ही आँखों में हँसे । हँसते हँसते पंडित जी बोले—"आइए चौबेजी महाराज ! आपका मिजाज तो अच्छा है ?"—" हाँ ! जजमान अच्छो ही है । " कहकर चौबेजी बैठे और जब पंडितायिन की हँसी न रुक सकी तब वह वहाँ से भागकर अपने देवर के पास जा

बातें करने लगी। चौबे भी निरा गँवार ही नहीं था। इन दोनों की हँसी को ताड़ गया। उसे कुछ क्रोध भी आया और थोड़ा शर्माया भी सही। वह बोला—

"जजमान, ये तो घर के धंदे हैं! यूँही भयो करैं हैं। घर घर माटी के चूल्हा हैं।" पंडित जी ने—"हाँ? बेशक!" कहकर इस कथा को समाप्त कर दिया।

प्रकरण—११

सुखदा—नहीं दुःखदा !

जब कौरव-कुल-तिलक सुयोधन ही अपने कुकर्मों के कारण दुर्योधन कहलाया गया तब पति को गालियाँ देनेवाली, परमेश्वर तुल्य प्राण नाथ की झाड़ू से खबर लेनेवाली और इस तरह अपना घोर अपराध होने पर भी पति से क्षमा माँगने के बदले रूठ कर चली जानेवाली सुखदा को कोई दुःखदा कह दे तो उसका दोष क्या ? वह अवश्य ही दुःखदा के नाम से चिढ़ती थी। यदि किसी के मुँह से उसके सामने भूल से भी दुःखदा निकल जाय तो वह कहनेवाले की सात और सात चौदह पीढ़ी के पुरुखाओं को गालियाँ देते देते स्वर्ग से टाँग पकड़ कर नरक में ला डालती थी, वह कहनेवाले पर सत्रह भाटे लेकर मारने को दौड़ती थी और ऐसे ज्यों ज्यों वह चिढ़ती थी त्यों ही त्यों लोग अधिक अधिक उसे चिढ़ाते थे।

छठे प्रकरण में लिखी हुई घटना के अनंतर वह चली अवश्य ! चली क्या ? पीहर के धन का भूत जो उसके सिर पर सवार था उसे लिवा ले गया। यदि माता पिता से गहरा धन पाने पर भी वह दुलार में न पली होती, यदि माता की उसे हिमायत न होती तो वह हजार लड़ाई हो

जाने पर भी पति नारायण के चरण कमलों को छोड़ कर जाने का हियाव ही न करती। मैके के कुसंस्कार से उसके मन में ऐसा कुविचार उत्पन्न हुआ और ऐसे समय फूँक कर आग सुलगा देने का काम उसकी पड़ौसिन ने किया। उसका नाम मथुरा था, किंतु इस समय पंडित जी के कुटुंब में कलह का दावानल प्रज्वलित करने के लिए वह मंथरा बन गई। वह लाख क्रोधी, सिर चढ़ी और ढीठ होने पर भी एक भले घर की बेटी और दूसरे भले घर की बहू थी। यदि मथुरा —मंथरा न मिलती तो शायद घर की चौखट लाँघने का उसे साहस ही न होता। कुलवधुएँ कहा करती हैं कि "जो चौखट पार सो दुनियाँ पार।" उनका कहना यथार्थ भी है। जब तक लड़ाई झगड़ा, बुराई भलाई घर की घर में रहे तब तक गृहस्थी के बड़े से बड़े उलझन के मसले सहज में, काल पाकर आप सुलझ जाते हैं। "देहली पर्वत है"। किसी काम के लिये घर की देहली को लाँघ कर बाहर निकलना भी मुशकिल और निकल जाय तो वापिस आना भी कठिन।

क्रोध के भूत ने सुखदा को ऐसी बातें सोचने का अवसर ही न दिया और इस समय मथुरा की सलाह से वह "पहले ही कडुवी करेली और फिर नीम चढ़ी" बन गई। मथुरा ने उसे रंग पर चढ़ाते चढ़ाते यहाँ तक कह डाला कि—

"एक बार तू करके तो देख। निपूता झख मारता तुझे मनाने न आवे तो मेरा नाम! न आवेगा तो आप ही भूखों

मर जायगा! प्रथम तो उस भिखारी को इतना पैसा ही कहाँ नसीब कि जन्म भर पड़ा खावे तो भी न बीते, फिर भाई ने उसे कुछ सहारा भी दिया तो उसे करके खिलावेगा कौन ? उस नखराली भौजाई से रोटियाँ सेक कर खिलाना बनेगा ? चार दिनों में लात मार कर निकाल देगी।"

"बहन, तेरी सलाह तो ठीक है। अब मैंने भी सोच लिया है। इस घर में पानी भी न पीयूँगी। पर जाऊँ भी तो जाऊँ कहाँ ? कहीं जाकर माथा मारने का ठिकाना भी तो चाहिए। गुस्सा तो ऐसा आता है कि जहर खाकर सो रहूँ। मैंने मर मिटने के लिये अफीम की डिबिया भी निकाल ली थी। लेकिन (कुछ हँसी सी दिखाकर) महीने दो एक की आस है बस इसी विचार से रुक गई।"

"अरे तेरे लिये कहीं ठिकाना ही नही है? जिसकी मा जान देने तक को तैयार उसके लिये माथा मारने को ठिकाना नहीं ? देखो बात! मैं अपने ही यहाँ रख सकती हूँ। ऐसे संकट की बिरियाँ प्यारी बहन को मदद देने के लिये मेरा सिर तक हाजिर है पर करूँ क्या ? मैं (अपने पति की ओर इशारा करके) उनसे डरती हूँ।"

"हाँ बहन सच है! पर मेरे बाप का मिजाज बहुत बुरा है। उनको पहले ही इन लोगों ने चुगलियाँ खा खा कर बहका रक्खा है। जो नाराज हो जाँय तो घर में घुसने तक न दें।"

"अरे बावली, मा बाप कहीं बेटे बेटी से ऐसे नाराज

हुआ करते हैं ? तिसमें तू एकलौती बेटी । और जो तेरा बाप ही नाराज हो जाय तो करेगा क्या ? तेरी मा के आगे उसकी कुछ चल थोड़े सकती है । वही लुगाई का गुलाम है । जरा तेरी मा ने कुछ नखरा दिखलाया कि बस हाथ जोड़ने लगेगा । मैं कहती हूँ और छाती ठोक कर कहती हूँ कि तू जा और जब तक तेरा आदमी तेरे पैरों में पगड़ी डालकर न लावे कभी इस घर का मुँह न देखियो । तेरी माँ के यहाँ जो कुछ है तेरा ही है । तेरे बाप के एक तेरे सिवाय कोई लड़का बाला भी तो नहीं है ।"

"हाँ बेशक ! पर मुझे अपने चाचा जी का डर है । उनका स्वभाव बड़ा चिड़चिड़ा है । वह जिद्द में आकर घर में न घुसने दें तो मैं न घर की रहूँ न घाट की ।"

"और न भी घुसने दें तो हर्ज क्या है ? (कुछ मुसकरा कर) वहाँ चली जाना ।"

"चल निगोड़ी (कुछ हँसती हुई उसके एक धक्का मार कर) ऐसे दुःख के समय तुझे दिल्लगी सूझी है । तू ही जाना ? उनके यहाँ ?"

"चल ! चल ! तेरे सब गुण मेरे पेट में हैं ।"

"और तेरे मेरे पेट में हैं ! ! "

बस इस तरह मंथरा मथुरा ने जब सुखदा को पक्का कर लिया तब उसके लिये गाड़ी का प्रबंध किया । रात ही रात में सब घर का सामान दोनों ने ढो ढो कर गाड़ी में भरा और

भोर होते ही सुखदा वहाँ से चल दी। इस समय प्रश्न यही उठता है कि यह मथुरा कौन थी और उसने कांतानाथ से किस जन्म का बैर लेने के लिये सुखदा के भड़कते हुए क्रोध को अधिक भड़का कर उसके हाथ से ऐसा कुकर्म कराया। अथवा पराया घर फोड़ने की उसकी आदत ही थी! खैर इस सवाल का जवाब पाने के लिये पाठकों को कुछ समय तक राह देखनी पड़ेगी।

गाड़ी में सवार होने के बाद जब सुखदा का जोश कुछ कम हुआ तब उसने अपनी सहेली से पूछा भी कि-"रास्ते में मुझे कोई लूट ले तब?" परंतु मथुरा ने यह कह कर-"आज कल अंग्रेजों के राज में कोई लूटनेवाला नहीं? भले ही सोना उछा-लते चले जाओ और फिर गाड़ीवान भी मैंने ऐसा कर दिया है जो अपनी जान दे दे पर तेरा एक पैसा न लेने दे। तू डर मत! सुख से चली जा! और है ही कितनी दूर। मैं तो अभी पैदल फटकारूँ तो बारह वहाँ जाकर बजाऊँ।"

अपनी सहेली के शब्दों से संतोष पाकर सुखदा वहाँ से चली अवश्य परंतु ज्यों ज्यों गाड़ी आगे बढ़ती गई त्यों त्यों उस का कलेजा अधिक अधिक धड़कने लगा। कहीं पत्ते की खड़-खड़ाहट सुनाई दी और "चोर आ गया" कहीं दो चार आदमी इकट्ठे दिखाई देते ही "डाका!"। उसे पेड़ पेड़ में नाले नाले में और जंगल जंगल में चोर, उचक्के, उठाईगीर और डकैत दिखलाई देने लगे। उसमें और चाहे कितने ही

दोष क्यों न हों परंतु इसमें उसका बिलकुल दोष न था। उसने एक दो, नहीं बीस बार कहा कि—"भैया रास्ता छोड़ कर जंगल में कहाँ लिये जाते हो?" उसने चिल्ला चिल्ला कर कहा कि—"इस गाड़ीवाले की नियत खराब मालूम होती है।" परंतु जो सचमुच बहरा हो वह तो शायद अधिक जोर देने से थोड़ा बहुत सुने तो सुने भी ले किंतु मतलबी बहरा ढोल बजाने पर भी नहीं सुन सकता। इस तरह बारह बजे पहुँचा देने के बदले जिस समय पाँच बजे वह गाड़ी को लेकर एक बयाबान जंगल में पहुँचा। और वहाँ पहुँचते ही वह इधर गाड़ी टूट जाने का बहाना करके कुल्हाड़ी से जब खटखट करने लगा तो उधर जंगल में झाड़ियों की आड़ में से पाँच लठैतों ने निकल कर फौरन गाड़ी को चारों ओर से घेर लिया। उसने इन्हें देख कर बहुतेरी गालियाँ दी, यह बहुत रोई चिल्लाई, इसने बहुतेरी हाहा खाकर उनके आगे अपना आँचल बिछाया परंतु उन लोगों ने इसकी एक भी न सुनी। उसने उनसे अपना जेवर देते हुए चीं चपड़ भी कम न की परंतु एक आदमी जब लट्ठ से उसकी खोंपड़ी फोड़ने को तैयार हो गया, दूसरे ने उसके इस जोर से थप्पड़ें मारीं कि उसके नाक में से नकसीर चल निकली और तीसरा पैर के कड़े खुलने में देरी होते ही जब कुल्हाड़ी से पैर काट डालने को तैयार हुआ तब उसने अपने हाथ से अपना गहना उतार उतार कर दे दिया।

दे क्या राजो खुशी से दिया ? वे सब छीन कर ले गए। राई रत्ती ले गए। पानी पीने के लिये एक लोटा तक न छोड़ा। जहर खाने के लिये एक पाई तक नहीं। लाज ढाँकने के लिये कपड़े के नाम पर यदि एक फटी साड़ी भी दे देते तो कुछ बात भी थी परंतु सब बातों का सार यही है कि उन्होंने एक लंगोटी के सिवाय कुछ भी न दिया और उसी समय ये पाँचों और छठा गाड़ीवान बैलों की जोड़ी को लिए हुए जल्दी जल्दी कदम बढ़ाकर वहाँ से चंपत हुए। जब तक यह अपनी नजर के हरकारे भेजकर उनका पीछा कर सकी इसने किया और उनमें से इसने कुछ कुछ एक आदमी को पहचाना भी। यह शायद अधिक भी पहचान लेती परंतु एकाएक इसके कानों पर "मारो ! मारो !" और "पकड़ो ! पकड़ो !!" की आवाज आई। और बात की बात में आठ दस आदमियों ने उन पाँचों को घेर लिया। घेरते ही दोनों ओर से खूब लठबाजी हुई। इसके देखते देखते दोनों ओर के दो तीन आदमी घायल होकर गिर गए, उनकी खोपड़ियाँ फटकर लहू से धरती लाल हो गई और एक पल भर में "हाय मरारे ? हाय बेतरह मारा गया ?" के गगनभेदी रुदन ने उस प्रशांत जंगल के पशु पक्षियों में हल चल मचा दी। जब इसके पास का सब माल मता लुट चुका था तब "नंगे का चोर क्या छीनै ?" इस कहावत से इसे अब चोरों का भय नहीं था। इसलिये यह घने पेड़ों की आड़ में खड़ी रहकर यह देखना

चाहती थी कि ये चोर कौन हैं ? और उन्हे मार कूट कर चोरी में से मोरी करने, उनके पास से माल ताल छीन कर उनकी मुश्के कस लेनेवाले कौन ? इसीलिये प्राण भय होने पर भी यह थोड़ी देर तक वहाँ डटी रही किंतु जब वे लोग लाठी से आपस में लड़ते झगड़ते इसकी ओर बढ़ने लगे तब यह एकाएक डर के मारे काँप उठी। इसे भय हुआ कि " कहीं मुझे भी इन चोरों की तरह बाँध ले जाँय तो ? अथवा मैं किसी से कह दूँगी इस शक से मुझे कोई मार ही डाले तो नाहक जान जाय।" इस तरह का भय पैदा होते ही यह भागी। भागते हुए इसने कई बार ठोंकरे खाईं, कई बार धरती पर गिरकर इसने दंडवत की। गिरने पड़ने से इसका शरीर छिल गया, जगह जगह खून निकल आया और ऐसे गिरती पड़ती जब रात के ग्यारह बजे अपने पिता के दर्वाजे पर पहुँची तब यह लगभग अधमरी सी होकर धड़ाम से धरती पर गिरकर बेहोश हो गई।

जब वह मूर्च्छित ही हो गई तब यदि वह पनाले के कीचड़ में गिरी तो क्या ? और उसके मुँह को कुत्ते ने चाटा तो क्या ? परंतु उस बेहोशी की दशा में जब जब इसे थोड़ा बहुत भी चेत हुआ तब तब इसकी माता ने इसके टूटे फूटे शब्दों को इकट्ठा कर के जो मतलब निकाला उसका भाव यह था—

"मैंने जैसा किया वैसा पा लिया। मैं जो अपने आदमी

से रूठ कर उस हरामजादी के बहकाने से अपना सारा माल मता न ले आती तो चोर ही मुझे क्यों लूटते ? मैंने अपनी आँखों से देख लिया कि लुटेरों में मथूरिया का आदमी था। परंतु हाय ? अब मैं क्या करूँगी ? मेरा धन गया, कपड़े गए, जेवर गया और चोरों को पकड़ ले जाने वालों में जो कहीं वे ही हों तो उनके भी चोट इतनी आई है कि उनका बचना मुशकिल। हाय ? अब मैं विधवा होकर कैसे जियूँगी। मैंने जैसा किया वैसा पाया। कुसूर मेरा ही है। मुझे खूब दंड मिल गया। हाय मैं मरी ? अरे कोई मुझे बचाओ ?"

अपनी बेटी का दुःख देखकर माता बहुत रोई। पिता को कष्ट अवश्य हुआ परंतु इसलिये नहीं कि बेटी का सारा मालताल लुट गया। क्योंकि जब वह अपने खाविंद से रूठकर आई थी तब उसे ऐसा दंड देने में परमेश्वर ने न्याय ही किया किंतु दुःख इसलिये हुआ कि उनकी कर्कशा बेटी ने अपने आदमी को सताया और वे उसे छुड़ाने ही में बहुत घायल हुए।

प्रकरण—१२

सुखदा की सहेली।

गत प्रकरण में सुखदा ने पाँच लुटेरों में से सहेली मथुरा के आदमी को पहचाना सो ठीक ही पहचाना था। मथुरा द्वारका की विवाहिता पत्नी नहीं थी। दोनों की जात भी एक न थी। बेशक द्वारका जात का मीना था और लूट खसोट ही उसका पेशा था किंतु मथुरा की जात पाँत का कुछ ठिकाना नहीं था। उसे कोई कुछ बतलाता था और कोई कुछ। हाँ इतना अवश्य था कि जब उसने द्वारका को अपना खसम बनाया तब उमर अट्ठाईस वर्ष की थी और इससे पहले वह पाँच छः जनों के घर में बैठ चुकी थी। अब तो उसे भली ही कहना चाहिए क्योंकि जब से वहनाते अथवा धरेजे की प्रथा के अनुसार द्वारका के घर में घुसी उसने पति बदलौवल का इरादा बिलकुल न किया और इसी लिये मथुरा की जवानी का उत्तरार्द्ध, बुढ़ापा द्वारका के यहाँ कट गया। कट गया और अच्छी तरह कट गया। यहाँ आने के बाद उसके व्यभिचार की कभी किसी ने शिकायत नहीं सुनी। बस यही कारण हुआ कि उसे अपने पड़ोस में पंडित कांतानाथ ने रहने दिया।

उसने लोअर प्राइमरी स्कूल में हिंदी की खूब शिक्षा पाई

थी। स्कूल के बाद भी उसका ध्यान पढ़ने लिखने की ओर अच्छी तरह था इस लिये वह गली मुहल्ले की औरतों में खूब पढ़ी लिखी गिनी जाती थी किंतु इसमें संदेह नहीं कि विद्या जो मनुष्य जाति के चरित्र शोधन की एक मुख्य सामग्री है उसने मथुरा के पास पहुँच कर एक भयंकर शास्त्र का काम दिया। चरित्रभ्रष्टा माता की कोख में जन्म लेकर, बाल वय से दुराचारिणी अबलाओं की सुहबत में पड़ने से मन बहलानेवाले और अच्छे शिक्षाप्रद उपन्यासों के बदले भ्रष्ट उपन्यासों को पढ़कर उसका चरित्र नष्ट भ्रष्ट हो गया। कुमार्ग से बचाकर सुमार्ग पर लाने के लिये किसी का उस पर अंकुश नहीं रहा अथवा यों कहो कि यदि कोई अंकुश खड़ा भी हुआ तो उसने कोपल ही में उसे तोड़ मरोड़ कर फेंक दिया, बस यही कारण हुआ कि वह आज सब फन की उस्ताद हर फन मौला बन गई।

द्वारका के घर में आने के बाद उसके भय से क्योंकि उसने मथुरा से स्पष्ट ही कह दिया था कि "जो कहीं मैंने ज़रा सा भी शोशा तेरी बद्चलनी का पाया तो तुरंत ही (छुरी दिखला कर) इससे नाक कान काटे बिना न छोड़ूँगा।" अथवा उस महात्मा के उपदेश से उसने इधर उधर आँखें लड़ाना छोड़ दिया था। छोड़ क्या दिया था अधिक व्यसन में पड़े रहने से वह बूढ़ी जल्दी हो गई थी इस लिये उसे अब कोई पूछता भी न था। खैर! किसी कारण से हो अब

वह सचमुच "वृद्धा वेश्या तपेश्वरी" बन बैठी थी। बन अवश्य बैठी परंतु चोर चोरी से जाय तो क्या हेरा फेरी से भी आय—इस कहावत के अनुसार उसने "तूं बा बदलौवल" नहीं छोड़ी थी। सुखदा के पास आ आ कर उसकी सहेली बन जाने का यही मुख्य कारण था।

पंडित और पंडितायिन जब सदा ही विदेश में रहा करते थे तब वे बिचारे क्या जानें कि उनके घर में क्या होता है, किंतु बहुत चौकस होने पर भी कांतानाथ इसके झाँसे में आगए। उसने मथुरा को पढ़ी लिखी और नेक चलन समझ कर उसके अच्छे अच्छे उपदेशों की प्रशंसा सुन कर सुखदा को पढ़ाने पर नियत किया। मथुरा ने सुखदा को केवल लिखना पढ़ना ही क्या सिखलाया वरन जब सुशीला ने जिस तरह प्रियंवदा को शिक्षा देने में अपना ही नमूना उसके आगे खड़ा कर दिया था तब सुखदा की तालीम के लिये मथुरा का चरित्र ही आदर्श बनाया गया।

इसका जो कुछ परिणाम हुआ उसका कुछ अंश पाठकों ने गत प्रकरण में पढ़ लिया और शेष अब देख लेंगे। मथुरा की कुसंगति में पड़ कर सुखदा बिलकुल बिगड़ ही गई अथवा बिगड़ते बिगड़ते बच गई सो भगवान जाने किंतु इसमें संदेह नहीं कि दोनों को पक्का भरोसा हो गया था और इसी लिये एक दूसरी के आगे खुल गईं थीं। इसी कारण से

गत प्रकरण में एक ने दूसरी से और दूसरी ने पहली से से कह दिया था कि—"तेरे गुण मेरे पेट में हैं।" अस्तु !

मथुरा ने अपने खसम से कह कर जिस समय सुखदा को लुटवा लेने का मनसूबा किया उस समय उसके अंतःकरण पर खटका अवश्य हुआ था कि दैव संयोग से जो कहीं यह भेद सुखदा को मालूम हो जाय तो बात बिगड़ जायगी किंतु वह अपने हथकंडे में कसकर सुखदा को कठपुतली बना चुकी थी, उसे अपनी "जबाँ दराजी" का भरोसा था कि बात की बात में कुछ न कुछ बात बना कर उसका संदेह तुरंत निवृत्त कर लूँगी और उसने यहाँ तक सोच लिया था कि कहीं भेद भी खुल जाय तो एक सुखदा के घर से आवागमन बंद होते ही दूसरा घर खुल जायगा। बस इसलिये उसने ही द्वारका को उत्तेजित किया और उसी की सलाह से भोंदू काछी कहीं से बैल और कहीं से गाड़ी लाकर सुखदा को अपने मैके पहुँचा देने पर तैयार हुआ।

मथुरा के खसम को इस बात की कसम थी कि जहाँ रहता उस जगह से बीस बीस कोस तक चोरी या डकैती न करता, यहाँ तक कि जिस राज्य में रहता उसमें सदा भला बन कर ही रहता। इस कारण उसने नाहीं नूहीं भी बहुत की किंतु आज वह मथुरा के झाँसे में आ गया और सच पूछो तो इसी लिये अपने ही हाथों से अपने पैर तुड़ा बैठा। अपने ही हाथों से उसने अपने पैर पर कुल्हाड़ी मारी।

उसने क्योंकर अपने पैर आप ही बँधवा दिए सो शायद समय आप ही आगे चल कर प्रकाशित कर दे किंतु अभी तक सुखदा के सिवाय उसे किसी ने नहीं पहचाना था और वह मथुरा के हाथ की गुड़िया थी। मथुरा जिस तरह नचावे उस तरह नाचने को तैयार थी और जो लोग लुटेरों को पकड़ने को आए उनमें से एक के हाथ का लट्ठ खाकर खोपड़ी फट जाने पर भी गिर कर हाय। हाय!! करने के बदले भाग कर वह हिरन हो गया था।

खैर! जो कुछ होना था सो हो गया और जो कुछ होगा, सो देख लिया जायगा किंतु इन लुटेरों को पकड़नेवाले कौन थे? इस किस्से को अधिक उलझन में डालने के बदले थोड़े में इस बात को यहीं खोल देना मैं उचित समझता हूँ। इन को पकड़नेवाले थे पंडित कांतानाथ। उनकी इच्छा न थी कि ऐसी कर्कशा स्त्री की रक्षा की जाय। यदि उनकी चलती तो वह उसके लुट जाने की खबर पाकर दुःखित होने के बदले एक पसे का प्रसाद बाँटते, और जब वह घर में से निकल ही गई तो फिर उसका कभी नाम तक न लेते क्योंकि वे उसके अत्याचारों के आगे तंग आगए थे और इसलिये उन्होंने पक्का मनसूबा कर लिया था कि ऐसी दुष्टा स्त्री से तो कुँवारा ही अच्छा। दिन रात के चौबिस घंटे में एक बार टिक्कड़ सेंक खाए और "जहाँ पड़ा मूसल वहीं खेमकूशल।" परंतु पितृ समान बड़े भाई के सामने कुछ भी न चली। प्रियंवदा के

परामर्श से और बड़े भाई की आज्ञा से ये आठ दस आदमियों को साथ लेकर सुखदा को उसके मैके तक पहुँचाने गए। प्रियंवदा ने देवर से जब साफ कह दिया कि—"यदि कुछ से कुछ हो पड़ेगा तो जननी तुम्हारी लाजेगी, वह तो औरत की जात है। उसे ही नीच ऊँच का ख्याल होता तो घर से निकलती ही क्यों ? तुम यदि उससे दुःखी हो गए हो तो उसे वर्ष दो वर्ष मत बुलाना ! और नहीं भी क्यों बुलाना ? वह यदि अलग रहने ही में राजी है तो क्या चिंता है ? अलग रहो। इस घर में जो कुछ है वह तुम्हारा ही है। हमारे यहाँ तुम्हारे सिवाय कौन है ? बस खाओ पियो और मौज करो। खर्च वर्च की तुम्हें कुछ तकलीफ न होने पावेगी।"

इस तरह वे भाभी के दबाव डालने से गए और सो भी केवल उसे अपने बाप के दरवाजे तक पहुँच कर वापिस आजाने के लिए गए। गए अवश्य परंतु इनके जाने में कोई दो घंटे का विलंब हो गया था। यदि देरी न होती तो शायद ऐसी लूट खसोट का अवसर ही न आता। खैर ! पंडित कांतानाथ को द्वारका के लट्ठ की चोट बेशक बहुत आई थी और इसीलिये एक बार वह धरती पर गिर कर लोट पोट भी हो गए थे किंतु फिर जी कड़ा करके वे उठे और अपने साथियों की सहायता से द्वारका के सिवाय जो लड़ाई के मैदान में से अपनी जान बचा कर भाग निकला था सब को पकड़ कर उन्हीं के साफों से कस लाए। माल भी इनके रत्ती रत्ती हाथ

लग गया और इन्होंने माल और मुजरिमों को पुलिस के हवाले करके अपनी रिपोर्ट लिखवाने, अपना बयान देने और माल मुजरिमों की रसीद लेने के अनंतर अपने घर का रास्ता लिया।

छोटे भैया के मुख से "अथ से लेकर इति तक" सारा किस्सा सुन कर पंडित प्रियानाथ ने उनकी वीरता को सराहा सही परंतु सुखदा को पीहर पहुँचा कर न आने पर वह कुढ़े भी कम नहीं। यद्यपि देवर के चोट गहरी आजाने से प्रियंवदा उनकी मरहम पट्टी में लगी हुई थी और उसने आँख के इशारे से जब पति से नाहीं कर दी थी तब उन्होंने उनसे कुछ कहना और सो भी इस कष्ट के समय कहना उचित नहीं समझा, परंतु वे स्वयं इस बात से सुस्त न रहे। वे घोड़ी पर काठी कसवा कर खुद गए और अँधेरी रात और मेह बादल की पर्वाह न कर प्रियंवदा के मना करने पर भी गए। रातों रात चल उन्होंने दिन निकलते निकलते घटना स्थल का पता लगाया और वहाँ से खोज खोज कर जब वह सुखदा की खोज में उसके बाप के घर में जा घुसे तब समधी से मिले बिना ही, उसके देख लेने पर घोड़ी दौड़ा कर अपने गाँव में वापिस आगए।

प्रकरण — १३

गृहचरित्र ।

पंडित वृंदावन बिहारी को भोर ही स्नान के लिये जाते समय यदि सुखदा पनाले के कीचड़ में सनी हुई, मूर्च्छित अवस्था में धरनी पर पड़ी हुई, केवल एक लँगोटी लगाए हुए न दिखलाई दी होती, यदि जिस तरह वह अपना माल टाल लेकर ससुरार से रूठ आई थी उसी तरह उनके सामने आती, बिमला के हजार सिर फोड़ने पर भी वह कदापि सुखदा को अपने घर की चौखट पर पैर न रखने देते। वह उसी समय चार आदमी साथ करके उसको ससुरार भेज देते और "जब तक उसका पति उसकी सिफारिश न करता तब तक केवल इकलौती बेटी होने पर भी, उसके सिवाय उनके और कोई संतान न होने पर भी, कभी उसका नाम तक न लेते क्योंकि उन्होंने बेटी की शिकायतें सुनकर अपनी गृहिणी विमला से स्पष्ट कह दिया था कि जब वह अपने पति को अनेक तरह से सताया करती है तब मेरे हिसाब मर गई। जैसे इतने मरे वैसे वह भी सही। यदि तुझे अपनी लाड़ली लड़की का पक्ष है तो तू भी जा उसके साथ। तैंने ही लाड़ कर के उसे माथे चढ़ा कर बिगाड़ा है और तेरे ही जमाने में वह न थुकवावे अथवा न थूके तो

मेरा नाम बदल देना। इस बात पर दंपति की आपस में कलह होने में भी कसर न रही। विमला इतनी समझदार थी कि उसने सुखदा की तरह अपने पति की झाड़ू से पूजा नहीं की। यह बहुत रोई झींकी तो पंडित वृंदावन विहारी चुप और उसने अपने पति से नाराज होकर दो दिन तक खाना न खाया तो वे चुप। बस हार झख मार कर वह सीधी हुई।

जिस समय पंडित जी स्नान के लिये निकले रात के चार बजे थे। गर्मी का मौसिम था। अभी पौ नहीं फटी थी। चोखट से बाहर पैर रखते ही उनकी दृष्टि किसी लंबी लंबी वस्तु पर पड़ी। उन्होंने अपनी घरवाली को पुकार कर लालटैन के उजाले में देखा और देखते ही उसे पहचान कर "हाय तेरी यह दशा!" कह कर वे चुप हो गए। विमला अपनी बेटी की ऐसी दुर्दशा देख कर बहुत रोई चिल्लाई, उसने दामाद को, सुखदा के जेठ जिठानी को और उनकी सात और सात चौदह पीढ़ी को जी खोलकर गालियाँ दीं। उसने अपनी छाती माथा कूट कूट कर लाल कर डाला परंतु पंडितजी बोले—"अब रोने झींकने से होगा क्या? जैसा तैंने बोया है वैसा ही काट!" इतना कह कर विमला की सहायता से वे उसे उठाकर भीतर ले गए। वहाँ जाकर उन्होंने उसे स्नान कराने के अनंतर चारपाई पर लिटाया। वे स्वयं एक नामी वैद्य थे। उन्होंने दवा दी। इसके बाद का जो कुछ

हाल था वह प्यारे पाठकों ने गत ग्यारहवें प्रकरण में पढ़ ही लिया।

उस प्रकरण के अंत में वेहोशी की दशा में उसके मुँह से जो कुछ निकल गया था वही बात माता की जबानी सुन कर वह मन ही मन बहुत पछताई। उसने ऐसी भूल हो जाने पर अपने आप को कोसा भी बहुत। वह बोली—

"नहीं मा! ऐसा नहीं! मैं न जाने क्या क्या बक गई? बात इस तरह हुई कि उन्होंने मुझे मार कूट कर घर से बाहर निकाल दिया। यह देख (अपने शरीर पर गिर जाने से जो चोटें आई थीं उन्हें दिखला कर) मार के निशान और निकाला इस लिये कि मैंने उनको उस छिनाल जिठानी के साथ देख लिया था। मेरा सब माल असबाब उन्होंने छीना है। बिचारी मथुरा तो मेरे लिये जान तक देने को तैयार है। उसका आदमी मुझे क्या लूटेगा और मैं लाई भी क्या थी जिसे किसी ने लूट लिया। मेरे पास पहनने के लिये एक छल्ला तक तो रहने ही न दिया, फिर कोई लूटता भी तो क्या लूटता?, हाँ! रास्ते में एक कंजर जरूर मिल गया। बस उसी ने मेरी ऐसी खरावी कर डाली। हाय! अब मैं क्या करूँगी? जो बाबूजी ने मुझे निकाल दिया तो मेरा दुनियाँ में कहीं ठिकाना नहीं। भगवान मुझे मौत दे दे। ऐसे दुःख पाकर जीने से तो मरना अच्छा।"

"नहीं बेटी (आँसू पोंछती हुई) रोवै मत! मैं रक्खूँगी

मेरी लाली ! (छाती से लगाकर) घबड़ावै मत। जो तेरा बाप तुझे निकाल दे तो मैं अपनी जान दे डालूँ ! मैं मर मिटूँ ! ”

“ तू कल जान देती आज ही दे डाल ! भले ही तू भी इसके साथ ही चली जैयो। मैं आज कहता हूँ, साफ़ साफ़ कहे देता हूँ। मैं इसे यहाँ नहीं रहने दूँगा। इसे जब तक आराम न हो यह बेशक यहाँ रहे। मैं नाही नहीं करता। परंतु आरोग्य होते ही मैं या तो उन्हें बुलाकर उनके सिपुर्द कर दूँगा अथवा किसी मौतबर आदमी के साथ वहाँ ही भेज दूँगा। जहाँ की चीज वहाँ ही अच्छी ! ”

पंडित जी की आज्ञा सुनकर मा बेटी ने खूब रो धोकर कुहराम मचाया। उन दोनों के रोने के राग में छाती माथा कूटने की ताल मिल जाने से जो कोलाहल हुआ उसने पड़ोसियों के मन में कुतूहल पैदा किया। किसी ने समझा “ इनके यहाँ कोई मर गया है। ” कोई बोली—“मरैगा कौन ? बिचारी सुखदा मरी होगी। ” किसी ने कहा—“बिचारी नहीं ! वह बड़ी हरामजादी है ! रामजी ऐसे तिरिया चरित्तर से बचावै।” कोई कहने लगी–“ नहीं ! उसका कुछ कुसूर नहीं है। उसके ससुराल वाले बड़े खोटे हैं। बात बात में उसे मारते कूटते हैं। और उसका बाप भी उन्हीं की मदद करता है। ” तब तुरंत किसी ने कह दिया “कुछ भी हो हमें क्या ? चलो ! तमाशा देखें । ” बस इस तरह के सवाल

अबाव का परिणाम यह हुआ कि पंडितजी के घर में गली मुहल्ले के लोग लुगाइयों का ताँता लग गया। कोई उनके साथ सहानुभूति दिखलाकर उनके दुःख का बोझा हलका करने के लिये आया और कोई सचमुच तमाशा देखकर उनकी जीट उड़ाने के लिये, उनकी फजीहत करने के लिये ।

सुखदा ने जो बातें मूर्च्छा के समय कही थीं उन्हें पंडित जी चाहे सच्ची ही समझते थे परंतु इस समय उनकी सुनने वाला कौन ? बस उसका दूसरी बार का बयान राई रत्ती सत्य समझ लिया गया। दोनों मा बेटी ने आनेवालियों के सामने खूब रंग लगाकर कहा। उसकी जेठानी और पति का खोटा व्यवहार बतला कर खूब ही झूठ उदाहरणों से उसे सिद्ध किया और अंत में सब लुगाइयों ने मिलकर "कसरत राय" से यही फैसला दिया की "सुखदा निर्दोष है। जो कुछ कुसूर है उसकी जेठानी, उसके पति और उसके बाप का।" दो एक बड़ी बूढी तैश में आकर पंडित जी को समझाने के लिये भी गईं परंतु उनकी लाल लाल आँखें और चढ़ी हुई भृकुटी देख कर डर के मारे दबे पाँव वापस आ गईं। इतना लिखने से प्यारे पाठक यह न समझ बैठें कि सब ही ने सारा कसूर प्रियंवदा के माथे थोपा हो। उनमें से कितनी ही उसे निर्दोष सती और भली समझने वाली भी निकलीं। उन्होंने उसका पक्ष करने में कमी न की। इस बात पर उन स्त्रियों की आपस में खूब लड़ाई हुई। दोनों

ओर से गालियों के खूब गोले बरसे। लड़ाई में कितनी ही औरतों की साड़ियां फट गईं, अंगिया फट गईं, लंहगे फट गए और गाल नोच नुचा कर लहू लुहान हो गए।

पंडित जी अभी तक विचार में मग्न थे। वे नहीं चाहते थे कि इन लुगाइयों की लड़ाई में पड़ कर अपनी भी पत धूल में मिला दें क्योंकि उनमें कितनी ही औरतें ऐसी भी थीं जो मामला आ पड़े तो उनके सिर की पगड़ी उतार लें। परंतु जब नौबत यहाँ तक पहुँच गई तब उनसे रहा न गया। वे अपने पोथी पत्रा यों ही डाल कर लाल लाल आँखें निकाले, क्रोध के मारे होंठ फड़फड़ाते अपनी कोठरी से बाहर हुए। बाहर आकर उन्होंने एक ललकार मारी। वे बोले—

"कोई है भी यहाँ? अरे मुलुआ! अजी रामदुलारे! ए नसीरखाँ! अबे सेवा! इन राड़ों को अभी कान पकड़ कर निकाल दो। उन्हों ने मेरे कान खा डाले! और (अपनी घर वाली और लड़की के लिये) यदि ये कुछ चीं चपड़ करें तो इन्हें भी निकाल डालो।"

बस पंडित जी का ऐसा क्रोध देख कर किसी ने लंबा घूँघट तान लिया, कोई लज्जित होकर और औरतों की आड़ में छिप गई और सब ही उनको गालियाँ देती हुईं अपने अपने घर चली गईं। बस पाँच मिनट में मैदान खाली हो गया और बात अधिक चंग पर चढ़ जाने से यदि पंडित जी

को सचमुच ही गुस्सा आजावे तो वे तुरंत ही अपनी घर वाली को अपनी बेटी को लात मार निकाल ही दें, बस इसी डर से वे भी रो धो कर चुप हो गईं।

वे चुप अवश्य हुईं परंतु उनका अंतःकरण चुप न हुआ। वे मन ही मन जिस तरह के उधेड़ बुन में लगी रहीं, उनकी अनुपस्थिति में जो जो उनकी आपस में सलाह हुई और इसी प्रकार से जिस तरह का घाट पंडित जी अपने मन में घड़ते रहे, सो आगे चल कर किसा न किसी सूरत में प्रकट हो ही जायगा, परंतु पंडित जी ने उनसे बोलना, उनकी ओर आँख उठा कर देखना तक छोड़ दिया। जब दोनों ने मिल कर उनकी बहुत खुशामद की, खूब चिरौरी की, हाथ जोड़े, आँचल बिछाए और क्षमा माँगी तब पंडित जी ने कह दिया—

"अब बहुत हुआ। हद हो गई। बस हुआ। सहनशीलता का भी कहीं छोर है। बस क्षमा करो। 'धाया तेरे रीझने से खीजना ही निवार।' अब तुम अपने और मैं अपना। तुम्हारे मन में आवे सो करो। यह घोड़ा और यह मैदान। "जिमि स्वतंत्र होइ बिगरहिं नारी।" तुम्हारा अंकुश निकल गया। खैर? मेरा प्रारब्ध? भावी बलवान् है? ईश्वर की इच्छा कुछ ऐसी ही है?"

इसके अनंतर क्या हुआ सो यहाँ न लिखना किस्से को उलझन में डालना है और ऐसा करने से मामला तूल भी पकड़ेगा, इस लिये संक्षेप से यहाँ जतला देना चाहिए कि

इस घटना के बाद पंडित वृंदावन विहारी अपने घर में न रहे अपने गाँव में न रहे और गृहस्थाश्रम में न रहे। वह इस तरह घर बार छोड़ कर, घर वाली और घर वालों से, धन दौलत से सगे संबंधियों से नाता तोड़ कर शिखा सूत्र का त्याग करके, न मालूम किधर चले गए। उन्होंने चोटी किससे कट-बाई, किसको गुरु बनाया और कब बनाया सो शायद कभी वही अपने मुख से बतावें तो मालूम हो सकता है। अभी तक उनके सिरहाने तकिए के नीचे जो एक पर्चा मिला उससे इतना ही मालूम हो सका कि—

'जब गृहचरित्र से, कुटुंब क्लेश से बड़े बड़े देवताओं को पराकाष्ठा का दुःख भोगना पड़ा है, जब कुटुंबक्लेश ने महाराज दशरथ के प्राण लेकर भगवान रामचंद्र जी को घर से निकलवा दिया जब गृह चरित्र से—

"एका भार्या प्रकृतिमुखरा, चंचला च द्वितीया,
पुत्रस्त्वेको भुवनविजयी, मन्मथो दुर्निवारः
शेषः शय्या जलधि शयनं वाहनं पन्नगारिः
स्मारं स्मारं स्वगृहचरितं दारुभूतो मुरारिः"

भगवान जगन्नाथ जी को भी काष्ट का हो जाना पड़ा तब मेरी क्या बिसात? खैर जो कुछ हुआ मेरे भले ही के लिये है। यदि यह घटना न होती तो मैं संसार के बंधन से मुक्त भी न होता। श्री कृष्णभक्त महात्मा नरसिंह (नरसी) जी को जब भौजाई के ताने से तंग आकर घर छोड़ना पड़ा तब

उन्होंने भाभी से नाराज होने के बदले उस का उपकार माना भी था और कपिराज सुग्रीव ने मर्यादापुरुषोत्तम रामचंद्र जी से—"बालि परमहित जासु प्रसादा, मिले मोहि प्रभु शमन विषादा।" कहकर वैरी बाली को धन्यवाद दिया था। यदि भगवान की कृपा से मेरी भी नरसी जी की तरह मनोकामना सिद्ध हो जाय तो मेरा सौभाग्य। बस इस लिये, इसी आशा से मैं भी इन दोनों का उपकार मानता हूँ। जब इन्होंने कोई ऐसा काम ही नहीं किया तब इनके लिये राग होने का तो वास्ता ही क्या? धन दौलत मिट्टी है। न सदा किसी के पास रहा और न रहेगा। किंतु हाँ! इनके खोटे बर्ताव पर घृणा करके मेरे अंतःकरण में द्वेष नहीं है। अब भी भगवान इन्हें सुबुद्धि दे तो ये सुख से रह सकती हैं। नहीं तो जैसा करेंगी वैसा पावेंगी।"

मा के लिये काला अक्षर भैंस बराबर था। बेटी थोड़ी थोड़ी मथुरा की संगति से पढ़ चुकी थी परंतु वह भी इस पत्र को अच्छी तरह न पढ़ सकी और इस लिये अपने पड़ोसी के लड़के को बुला कर पढ़वाया। सुनते ही दोनों के होश उड़ गए। "हाय अनर्थ होगया।" कहकर माता मूर्छित हो गई। बेटी ने भी गगनभेदी रूदन से सुननेवालों का कलेजा फाड़ डाला। विस्तार जानने के लिये तो प्यारे पाठक कुछ धैर्य्य धारण करें किंतु सार यही है। इनका सारा धन धूल में

मिल गया। ये अब दाने दाने को मुहताज हो गईं और इन्हें अपने किए का फल यहाँ ही मिल गया।

खैर। जो हुआ सो हुआ किंतु घर छोड़ने के पूर्व एक चिट्ठी जिसमें न मालूम क्या क्या लिखा था लिख कर पंडित वृंदावन बिहारी अपने दामाद के नाम भेज गए थे।

प्रकरण—१४

ब्रजयात्रा की झलक और कृष्णचरित्र ।

"क्यों चौबे जी महाराज ? कल वहाँ से भाग क्यों आए ?"

"भाजि का आयो जजमान ? न भाजि आतो तो तुम्हारी न्याँई मेरी हू गत बनाई जाती ! डरिके भाजि आयो । मार के आगे सों भूत हू भाजै है ! तामें मेरी सुलच्छनी के तो मैं एक ही हूँ !"

"और औरों की सुलक्षणियों के (प्रियंवदा की ओर मुस-कराकर) क्या बीस बीस होते हैं ? क्यों सुलक्षणी ?"

"हाँ ! सुलक्षणी वही जो पति की झाड़ू से पूजा करे। (पति की ओर हँसती हुई) बस ये ही सुलक्षणी के लक्षण हैं।"

"और बीस बीस रक्खे !"

"काला मुँह ऐसी सुलक्षणी का !"

"नहीं माई ? सवेरे ही सवेरे वाको कारो मुँह मति करो । मेरो तो वही अन्नदाता है । वाही के भाग तें अन्न मिलै है ।"

"तब ही तो वह तड़के ही तड़के झाड़ू से खबर लेती है । (पति से चार नजरें होते ही होठों ही होठों में) आप भी एक ऐसी सुलक्षणी रखिए ।

"तू ही (प्यारी की ओर हँसकर उसी तरह से) बन जा ।

आज दिन भी अच्छा है! अभ्यास न हो तो चौबायिन से सीख ले।"

इसका पंडितायिन ने कुछ उत्तर न दिया। आँखों ही आँखों में पति को उलहना देकर कुछ हँसते और कुछ लजाते हुए सिर झुका लिया। तब फिर पंडित जी ने चौबे जी से कहा—

"क्यों बंदर महाराज? कल आपने हमको पिटवा तो दिया परंतु यहाँ कहीं के दर्शन नहीं करवाए। यहाँ के समस्त मुख्य मुख्य मंदिरों के, श्री कृष्ण भगवान के लीलास्थलों के और सबही तीर्थों के दर्शन करवाओ। फिर आपको साथ लेकर बनयात्रा भी करेंगे।"

"अच्छो जजमान! पर हमारी बूटी की याद रखियो।"

"बूटी एक बार नहीं, नित्य तीन बार छानियो और सो भी मीठी और खूब मसाला डालकर?"

"जमुना मैया तुम्हारो भलो करै। याते विसेख हमें कछू नहीं चाहिए।"

इसके अनंतर मथुरा, वृंदावन, गोकुल, महाबन, दाऊजी, गोवर्द्धन, नंदगाँव, बरसाने आदि भगवान के लीलास्थलों के दर्शन में जो जो इन्हें अनुभव हुआ उसे यहाँ लिख कर इस पोथी को पोथा बना देने की मेरी इच्छा नहीं। व्रजमंडल की चौरासी कोश की बनयात्रा में कौन कौन से स्थान दर्शनीय है, किस किस स्थान पर भगवान ने कौन कौन लीला की है और

किस किस जगह क्या क्या करना होता है, इत्यादि बातें जानने के लिये मथुरा में "बनयात्रा" की अनेक छोटी मोटी पुस्तकें मिल सकती हैं। इन्होंने वहाँ के गुण दोषों का जैसा कुछ अनुभव पाया वैसा प्राप्त करने का काम या तो यात्रा ही करने से हो सकता है अथवा इस विषय पर कोई स्वतंत्र पुस्तक लिखी जाय तो हो सकता है। मुझे अभी इन्हें बहुत दूर तक ले जाकर घर पहुँचाना है और भी कई एक घर गृहस्थी की बातें दिखलानी हैं इसलिये पाठक महाशय क्षमा करें।

इन्हें इस यात्रा में भले और बुरे सब तरह के मनुष्य मिले। भले मिले तो यहाँ तक कि जिन्हें भगवती मार्तंडतनया में स्नान कर, यमुना की रेणुका में लोटने, भगवान श्री कृष्णचंद का भजन करने और दो मुट्ठी चना चबा कर लोटा भर जल पीने के सिवाय कुछ काम नहीं, पैसा, दो पैसा और रुपया दो रुपया तो क्या यदि हजार रुपये भी कोई देने को तैयार हो जाय तो उसकी ओर आँख उठाकर भी न देखें। और बुरे मिले तो ऐसे कि एक एक पाई के लिये मूड़ चीरनेवाले, चोरी और उठाईगीरी में उस्ताद "मुख में राम। बगल में छुरा" वाले ढोंगी साधु। इन्हें यदि संतोषी मिले तो ऐसे कि तीन मील तक आपके इक्के के साथ दौड़े जाने के अनंतर आपने जो एक पैसा फेंका उसकी तीन पाइयाँ बाँट कर चुप हो जानेवाले और असंतुष्ट, उचक्के मिले तो यहाँ तक कि यदि आप पैसा न दो तो गालियाँ दें और जो कहीं आप उन्हें आँखें दिखाना चाहो

तो आप की पगड़ी उतार लें ! खैर ! इन सब बातों का इन्होंने यह परिणाम निकाला कि—

"मथुरा में आज कल के जमाने की सी जितनी बनावट है गाँवों में उतना ही सीधापन है। वास्तव में यह श्रीकृष्ण का लीलाकेंद्र है। व्रजवासी अवश्य ही धन्य हैं जो यहां जन्मते और यहीं मरते हैं। व्रजभूमि में जन्म लेने में भी आनंद और मरने में भी आनंद। यमुना मैया की रेणुका में लोटने से वस्तुतः दैविक, भौतिक और दैहिक ताप दूर होते हैं। भगवान बलदाऊ जी के दर्शन कैसे अलौकिक हैं! उनकी मूर्ति में अहा! कैसी आकर्षिणी शक्ति है? गिरिराज के दर्शन करते ही जब गोवर्द्धन धारण का दृश्य मेरी आँखों के सामने आ खड़ा हुआ तब जैसा आह्लाद हुआ है वह मेरे वर्णन करने की शक्ति से बाहर है! अहा! वृंदावन के हरि मंदिर! बस कमाल हैं। इस उमर में यदि श्रीकृष्ण की लीला का सच्चा चित्र देखना हो तो वृंदावन! कुसुम सरोवर पर महात्मा उद्धव जी के दर्शन! बलिहारी! वहाँ के कदंबकुंजों में पहुँचते ही मेरा मन मोहित हो गया। चित्त ने चाहा कि बस यहीं सब तज और हरि भज। यदि कोई संसार से विरागी होकर बनों में विचरना चाहे तो यह स्थान मेरी लघुमति में हरिद्वार से भी श्रेष्ठ है। हरिद्वार में चाहे और स्थलों से कम ही क्यों न हो किंतु थोड़ा बहुत आज काल के तीर्थों का सा प्रपंच है और यहाँ प्रपंच का लेश नहीं। इसके अतिरिक्त चीर घाट और रास-

लीला, ये दोनों स्थल तो मुझे आजीवन स्मरण रहेंगे ? मेरी तो यही इच्छा होती है कि बस हो गई तीर्थयात्रा ! इससे बढ़कर क्या होगा। अब कुछ नहीं चाहिए। अब चाहिए केवल बनवारीलाल शोला के शब्दों में—

गजल—"अफसोस भरी नाथ सुनो मेरी भी हालत,
पापी हूं मुझे अर्ज से आती है खिजालत,
कैदी की तरह उम्र कटी मोह के बस में
पाबंद किया लोभ ने बेदाना कफस में,
हरेक घड़ी गुजरती है दुनिया की हवस में,
इक दिन भी नहीं काम का हर माह बरस में ॥ १ ॥
एक वक्त का तोशा नहिं औ सर पै सफर है,
पापों का बड़ा बोझ है व शिकस्ता कमर है,
हूं आपके चरणों से लगा जान लो इतना,
कुछ और नहीं चाहता पर मान लो इतना ॥ २ ॥
जिस दम मेरी उम्मेद से घरवालों को हो यास,
सब दूर हों सरकार ही सरकार हो इक पास,
फैली हुई शृंगार के फूलों की हो बू बास,
मुरली की सदा कान में आती हो चपो रास ॥ ३ ॥
हो जाऊँ फना पाऊँ जो इतना मैं सहारा,
जब बंद हों आंखें तो मुकुट का हो नजारा,
दम लब पै हो सीने में तसव्वुर हो तुम्हारा,
मिट कर भी जुदाई न हो चरणों की गवारा ॥ ४ ॥

जो ब्रज की रज है वही खाके कफे पा है,
मिट्टी यहां रह जाय तो वैकुंठ में क्या है ?
रोशन है कि यह सिजदह गहे अहले यकीं है,
जो जर्रा है यां खातमे कुदरत का नगीं है ॥ ५ ॥
उठा है यहीं आके नकाबे रुखे तौहीद,
हर वक्त नज़र आता है यां जलवए जावीद,
जो खाक में यां मिल गए क़िस्मत है उन्हीं की,
जो मिट गए यां आके हकीकत है उन्हीं की,
गलियों में यां घिसटते हैं जिन्नत है उन्हीं की,
जो भीख का याँ खाते हैं दौलत है उन्हीं की,
वो ताज शाही पर भि कभी हाथ न मारें,
दुनिया का मिले तख्त तो इक लात न मारें ॥ ७ ॥
कह सक्ता हूँ क्या ब्रज की खूबी व लताफत,
यह आँख नहीं जिसमें हो नज्जारे की ताकत,
मैं यह भी नहीं चाहता बिगड़ी को बनाओ,
मैं यह भी नहीं चाहता तकलीफ उठाओ ॥ ८ ॥
पर कुछ तो मेरे वास्ते तदबीर बताओ,
इतना भी नहीं हूँ जिसे चरणों से लगाओ,
नक्शे कफे पा फूँक निकलने को तो मिल जाय,
दो हाथ ज़मी ब्रज में जलने को तो मिल जाय ॥ ९ ॥
देखो न खुदाई की करामात बिगड़ जाय,
ऐसा न हो शोले की कहीं बात बिगड़ जाय * ॥ १० ॥

---

* रागरत्नाकर से ।

क्यों ठीक है ना? उनके भाग्य धन्य हैं! उनको अवश्य महात्मा ही कहना चाहिए जिन्हें इस पवित्र व्रज भूमि में मरना नसीब हो। यहाँ ऐसे भी लोग हो गए हैं जिन की इच्छा से उनका शव वैकुंठी बनाने के बदले इस गोलोक में टाँग पकड़ कर घसीटा गया है। भगवान ऐसा नसीब दे तब जन्म लेना सार्थक है, क्यों?"

"आपका कहना सब ही यथार्थ है परंतु ऐसी कड़ुवी बात कहकर मेरा कलेजा न छेदो। हाँ! इतनी मेरी भी इच्छा होती है कि अभी नहीं, बुढ़ापे में व्रजभूमि का निवास और आपके चरणों की सेवा। नाथ! वैष्णव मुक्ति नहीं माँगते। उनके लिये इस व्रजभूमि के आगे स्वर्ग भी तुच्छ है—मोक्ष भी रद्दी है। उनका सिद्धांत है कि कहा करों वैकुंठे जाय, वहाँ नहीं बंशीबट, यमुना, गिरिगोवर्द्धन, नंद की गाय।"

"वास्तव में यथार्थ है। तेरा कहना सत्य है। जो आनंद जन्म जन्मांतर तक इस व्रजभूमि में विचर कर भगवत् स्मरण करने में है वह स्वर्ग में कहाँ! था तो मुसलमान परंतु नव्वाब खानखाना (रसखान) भी कैसा कह गया है? उसका "एक एक बोल लाख लाख का मोल" है। उसने कहा है—

सवैया—"मानुष होहुँ वही रसखान
बसौं मिलि गोकुल गाँव के ग्वारन।
जो पशु होऊँ कहा बश मेरो,
चरौं पुनि नंद की धेनु मझारन।

पाहन होहुँ वही गिरि को
जो कियो व्रज छत्र पुरंदर धारन।
जो खग होऊँ बसेरो करौं
चाहि कालिंदि कूल कदंब की डारन। *"

"बेशक ठीक है ! यही चाहिए परंतु नाथ मेरे ओछे चित्त में एक बड़ा भारी संदेह है। एक, नहीं दो ? दासी का अपराध क्षमा करना ! बहुत दिनों से पूछने की इच्छा थी। संदेह यही कि चीरहरण लीला में गोपियों को नंगी देख कर श्रीकृष्ण ने क्यों उनकी लज्जा लूटी और उनका गोपिकाओं के साथ विहार, व्यभिचार क्यों नहीं कहलाता। मैं तर्क करके नहीं पूछती। तर्क श्रद्धा की जड़ नष्ट कर देता है और श्रद्धा चली जाने से मनुष्य का सर्वनाश है।"

"हाँ ! मैं जानता हूँ कि तू श्रद्धावती है और धर्म पर श्रद्धा रखकर संदेह मिटा लेना अच्छा ही है परंतु तेरे प्रश्न बहुत ही बड़े हैं, थोड़ी सी देर में उत्तर देना और सो भी ऐसा जिस से तेरा पूरा संतोष हो जाय जरा टेढ़ी खीर है। यह भगवान की लीला है। इस का मर्म बहुत गंभीर है। जिन लोगों की बुद्धि बहुत साधारण है वे उस मर्म को न समझ कर ही या तो इस बात को ही गप्प, पोपलीला बतलाते हैं अथवा श्रीकृष्ण भगवान को व्यभिचारी बतलाकर हिंदू समाज की मूर्खता पर तालियाँ पीटते हैं। यह उनकी

---

* रागरत्नाकर से।

भूल है कम समझ है। जब वेदादि शास्त्रों में उनके उत्कृष्ट चरित्र से और युक्ति प्रमाणों से सिद्ध है कि श्रीकृष्ण परमेश्वर का अवतार हैं, अवतार क्या अवतारी, फिर यदि उन स्त्रियों ने उनकी सेवा में सर्वस्व अर्पण कर दिया तो व्यभिचार क्योंकर हुआ ? व्यभिचार एक परस्त्री का दूसरे पर-पुरुष के संपर्क से पैदा होता है किंतु यहाँ श्रीकृष्ण जगत्पति, उनके परम पति थे। उनके पति भी जब अनेक होने पर भी सब श्रीकृष्णमय थे, जैसे सूर्य एक होने पर भी अनेक घटों में भिन्न भिन्न दिखलाई देता है वैसे ही वे एक होकर अनेक दिखलाई देते थे और सब ही श्रीकृष्णावतार थे तब व्यभिचार क्योंकर हुआ । सर्वशक्तिमान् परमेश्वर ने जैसे नारद जी को द्वारका में अपनी पत्नियों के यहाँ एक साथ भिन्न भिन्न रूप में दर्शन दिए थे वैसी ही यह लीला है । दूसरे उन गोपिकाओं में कोई श्रुतिरूपा थी और कोई ऋषिरूपा । वेद भगवान और वेद की ऋचाएँ श्रुतिरूपा । रामावतार में जिन ऋषियों ने भगवान से बरदान माँगा कि "हम आप के साथ प्रेम करें।" उन्होंने प्रेम किया। जिन्होंने उनकी पत्नी होना चाहा वे पत्नी हुईं। फिर भगवान की मुरली के मनोमोहक नाद से विह्वल होकर जो गोपियाँ उनके पास दौड़ी आईं उनसे (भागवत देखो) श्रीकृष्णचंद्र ने पहले स्पष्ट ही कह दिया था कि तुम अपने अपने घर जाकर अपने अपने पतियों को भजो क्योंकि तुम्हारी गति तो तुम्हारे पति ही हैं, पति ही परमेश्वर

है। परंतु उन्होंने इस उपदेश को गृहण नहीं किया। उन्होंने जैसे प्रश्न का उत्तर भी वैसा ही दिया। उन्होंने भी स्पष्ट कह दिया कि—"नाथ, हम ऐसे उपदेशों की अधिकारिणी नहीं हैं। हमारे तो परमेश्वर ही पति हैं और परमेश्वर ही गति है।" तब उनके साथ रासक्रिया की। किंतु क्या रासलीला व्यभिचार है। आज कल "बाल" में पर पुरुष के साथ कमर मिला कर नाचना व्यभिचार नहीं और एक अकेले ग्यारह वर्ष के बालक का सहस्त्रावधि स्त्रियों के साथ नाचना व्यभिचार! यह किस प्रामाणिक ग्रंथ में लिखा है श्री कृष्ण अमुक अमुक गोपी के साथ अमुक अमुक समय........."

'क्षमा कीजिए। लिखा क्यों नहीं है। एक भागवत में न सही और तो अनेक ग्रंथों में हैं। (पति के नेत्रों को उलझा कर होठों ही होठों में हँसती हुई सिर झुका कर) ऐसी ऐसी लीलाएं हैं जिनसे मन का भाव और का और हो जाय, भगवान मकरकेतु तुरंत ही हृदय में आ बिराजें।"

"तात्पर्य तो वही है जो मैं अभी कह चुका। और बेशक हँसी दिल्लगी की, छेड़ छाड़ की और विलास विहार की भी अन्य ग्रंथों में कमी नहीं है किंतु मूल उन सब का यही है। इसके सिवाय इसमें कुछ अध्यात्म भी है जो अवकाश के समय विस्तार से समझाने का है। अच्छा थोड़ी देर के लिये मान लिया जाय कि यह कवियों की कल्पना है परंतु यदि कवियों की कल्पना के घोड़े इतनी दूर तक जा पहुँचे तो इसमें दोष ही

क्या हो गया ? फारसी काव्यों में पहले "इश्क मिजाज़ी" मानुषी प्रेम और फिर "इश्क हक़ीकी" ईश्वरीय प्रेम दिखलाया जाता है परंतु लोग मिजाज़ी में ही उलझ जाते हैं। हक़ीकी तक विरलेही पहुँचते हैं। हमारे यहाँ दोनों ही प्रेम एक श्री कृष्ण में ही लगा दिए गए हैं बस इसलिये धर्म का धर्म, और कर्म का कर्म, दोनों साथ साथ होकर शीघ्र ही काम बन जाता है। नायकाभेद में परकीया नायका एक मुख्य अंग है। सब ही भाषाओं के काव्य इस अंग से वंचित नहीं हैं। किंतु जैसा मैं पहले कह चुका विदेशी भाषाओं में एक साधारण पर पुरुष का पर स्त्री से प्रेम पढ़कर जब पाठकों की अनुकरण में प्रवृत्ति होती है तब हमारे संस्कृत के विद्वानों ने, देश भाषाओं के कवियों ने इसका सारा बोझा श्रीकृष्ण पर थोप कर समाज को दुराचार से बचा लिया, क्योंकि भारतवर्ष के इस गए बीते जमाने में भी करोड़ों हिंदू श्री कृष्ण को परमेश्वर मानते हैं और "बड़े कहैं सो करना किंतु करैं सो न करना" उनका अटल सिद्धांत है। वे अब भी मानते हैं कि जो छोटी अंगुली पर गोबर्द्धन पर्वत को उठा लेने की क्षमता रखता था, जो महाभारत जैसे भीषण संग्राम में जाकर दुनियां को अपनी अंगुली पर नचाता था, जिसे गुरु के मृतक पुत्रों को यमराज से छुड़ा लाने की सामर्थ थी, जो द्रौपदी के वस्त्र बन गया, उसने ऐसा किया भी तो किया।

जब उसके और कामों को अनुकरण करने की शक्ति

नहीं तब ऐसा क्यों करें? बस इसलिये उनके चरित्र में परकीया नायका का विहार, प्रेम पढ़ कर, गा कर और सुन कर भी वे इसे जब भगवत की लीला समझते हैं तो उनका अवश्य उद्धार होता है।"

"हाँ अब समझी! आप ने मेरा संदेह छुड़ा कर कृतार्थ किया, परंतु चीरहरण!"

"चीरहरण में भी आध्यात्मिक रहस्य है और वह भी उसी प्रश्न का उत्तर देने में साथ साथ हल होने योग्य है किंतु चीरहरण से तेरा (हँस कर) मतलब क्या है? क्या तू स्वयं चीरहरण पसंद करती है?"

"जाओ जी! तुम तो फिर हँसी करने लगे। मैं पूछती हूँ (जरा गंभीर बनकर तिउरियाँ चढ़ाते हुए) श्रीमती प्रियंवदा देवी आज्ञा देती हैं कि भगवान कृष्णचंद्र का गोपियों के वस्त्र चुराने से क्या मतलब था?"

"जो मतलब मक्खन चुराने में था, जो प्रयोजन चित्त को चुराने में था वही वस्त्रों को चुराने में। सात वर्ष के बालक का (मुसकराकर) और क्या मतलब हो सकता है मौज आई और चुराए और सो भी इस लिये चुराए कि आगे से कोई स्त्री जलाशय में नंगी नहा कर बेशर्म न बने। यदि वृंदावन की तरह पंजाब में श्रीकृष्ण औरतों के इसी तरह वस्त्र छीन लेते तो वहाँ भी कोई स्त्री नंगी न नहाती?"

"हैं पंजाब में (जरा शर्मा कर) ऐसी चाल है? आग लगे

इस चाल को, गाजपड़े उन औरतों पर। मैं तो तब ही मर जाती तो अच्छा होता।"

बस इस तरह पंडित जी ने अपनी प्राणप्यारी को कृष्ण चरित्र का संक्षेप से अर्थ समझाया। इन्होंने अपनी शक्ति भर शक्ति से अधिक नहीं इस यात्रा के बजट में जितना नियत किया था उतना बंदर चौबे को दे दिला कर, उसके द्वारा चौबाइन के पास पहुँचा कर दंपति को प्रसन्न कर दिया किंतु चौबायिन को परदे की ओट से सुना कर अंत में इतना अवश्य कह दिया कि—

"अब ऐसे लंठ रहने का जमाना नहीं है। यदि तुम्हें अपने यजमान बनाए रखना है तो अपने चिनगी (यही चौबेजी के लड़के का नाम था) को संस्कृत पढ़ाना। अधिक विद्वान हो जाय तो अच्छी बात है। नाम पावेगा। नहीं तो कम से कम इतना अवश्य हो जाना चाहिए कि यह अपना कर्म आप कर सके। तुम्हारी मूर्खता से ही हमें गौड़बोले महाशय को रखना पड़ा। और इसमें तुमने नुकसान नहीं उठाया। यदि तुम्हारी तरह तुम्हारा लड़का भी लंठ रहा तो बस समझ लो कि सब यजमान तुम्हारे हाथ से निकल जाँयगे। क्योंकि किसी दिन ऐसा उद्योग होनेवाला है जिससे मूर्ख पंडों की वृत्ति बंद कर के पंडितों को दी जाय।"

"अच्छो जजमान! तिहारी मर्जी? या छोरा कूँ याकी अम्मा ने पढ़वे बैठारयो तो है पर जजमान याहू हमारी न्याँई

कपूत है। अम्मा तें फीस और किताबन के लिये पैसा मिलै जासों रबड़ी लेकर चाट जावै और जात्रीन तें माँग लावै जो भंग बूटी में, कनकौवा में उड़ा दे।"

"कपूत तू और तिहारो बाप दादा! अजमान तें वा दिना एक रुपैया तैंने पायो और सो सिगरो ही यार दोस्तन कूं भंग पियायवे में उड़ाय दयो। पूछ अम्मा ते। (हाथ पकड़ कर खैंचता हुआ) क्यों री अम्मा? याने उड़ायो या हमने उड़ायो? हमारे पैसान ते तो घर की साग तरकारी चलै है।"

"झूंटो! बदमाश!!"

"तू झूंटो! तू बदमाश!!"

पुत्र के मुख से गाली के जवाब में गाली सुनकर बंदर को क्रोध आया। बस उसने चिनगी के तान कर एक थप्पड़ मारा और वह रो रो कर कान की चैलियां उड़ाता हुआ अपनी अम्मा के पास पुकारू गया। इसके अनंतर चौबे जी को क्या दंड मिला सो मालूम नहीं हुआ और न इस बात से अब कुछ विशेष मतलब ही रहा किंतु इतना अवश्य हुआ कि प्रियंवदा ने एकांत में चौबायिन को जो उपदेश किया था उसका इतना असर इनकी वहाँ मौजूदगी में ही देखने में आया कि प्रियंवदा की देखा देखी दूसरे ही दिन से वह बंदर के चरण धोकर पीने लगी। रात को उसके पैर दाबे बिना कभी न सोने की उसने कसम खाली और जिस झाड़ू से पति को मारा करती थी उसे तोड़ मरोड़ कर बाहर फेंक दिया। पहले इनके यहाँ

जो कुछ रुपया पैसा आता था वह यों ही भांग के भाड़े में चला जाया करता था किंतु पत्नी के परामर्श से जब बंदर महाराज को जो कुछ मिले वह सब अपनी सुलक्षणी को दे देना और दूसरे भंग घर में पीना, बाहर नहीं—इस तरह दो प्रण कर लिये तो उनकी सुलक्षणी नित्य ही अपने हाथ से दोनों बिरियां भंग घोट कर उन्हें पिलाने लगी। ऐसे पैसा पैसा बचते बचते रुपया और रुपये से अशर्फी होते होते बंदर चौबे धनवान बन गए। दंपति पंडित प्रियानाथ जी और उनकी प्राणप्रिया प्रियंवदा को आशीर्वाद देने, उनके गुणों का गान करने लगे। लड़के पर भी उस दिन की पंडित जी की बात असर कर गई।

इस तरह मथुरा के एक बिगड़े घर को सुधार कर पंडित पंडितायिन ने भाई सहित, भगवानदास सहित और बूढ़े की स्त्री लड़के समेत वहाँ से कूंच किया। पंडित पंडितायिन के गुणों को देख कर बूढ़ा भगवानदास तो यहाँ तक लट्टू हो गया था कि बहुत बढ़कर, जब तक इनके पास बैठा रहता, घंटों तक इनके चेहरे की ओर देखकर मनही मन न मालूम क्या गुनगुनाया करता, बारंबार इनके आगे हाथ जोड़ जोड़ कर सिर झुकाया करता और मौके बेमौके इनसे कहा करता था कि—

"महाराज यह सारी जात्रा आपकी बदौलत है। नहीं तो मुझ जैसे जंगली गँवार को यात्रा कहाँ?"

"तुम अपने पैसे से यात्रा करते हो। इसमें मेरा एहसान ही क्या?" कह कर पंडित जी उसे लजाया करते थे।

प्रकरण—१५

बूढ़े की घबड़ाहट।

बूढ़े भगवानदास के गृहराज्य का खाका तीसरे प्रकरण में खैंच कर उसे तहसील के चपरासी के साथ भेज देने बाद वह पंडित जी के साथ तीर्थ यात्रा करने के लिये, भगवती भागीरथी में अपनी बूढ़ी हड्डियाँ डुबो कर देव दर्शनों से कृत-कृत्य होने के लिये और इस तरह अपना आपा सुधारने के लिये अवश्य चल दिया और गया सो भी अपने सब काम काज का बोझा बड़े लड़के पर डाल कर, उसे तोते की तरह उसके कामों का सबक रटाते हुए गया। किंतु तहसील में वह क्यों बुलाया गया था और बुलाने के पूर्व उसे ऐसी घबड़ाहट किस बात की थी—इन सवालों के लिये इस जगह थोड़ा बहुत लिख देना ही अच्छा है। इस बीच की घटना यहाँ प्रकाशित कर देने से न तो पाठक महाशय ही उसे भूलने पावेंगे और न उस बूढ़े के अंतःकरण में इस बात का उद्वेग रहेगा, क्योंकि यदि किसी के मन पर थोड़ा सा भी किसी बात का बोझा रहे तो फिर उससे भक्ति नहीं हो सकती। भक्ति जहाँ रहती है अकेली ही रहती है। जिस हृदय में वह निवास करती है वहाँ किसी मनोविकार को, मनोविकार ही क्यों ज्ञान वैराग्यादिकों को नहीं ठहरने देती और यदि संयोग वश बल

पूर्वक इन में से कोई आघुसे तो अपना डेरा डंडा उठाकर वहाँ से निकल भागती है। और बूढ़ा, बुढ़िया अपने पुत्र समेत भक्ति की गहरी कमाई करने के लिये बिदा हुए हैं।

बूढ़ा जब तक उस पीपल के पेड़ के नीचे अपने बाल बच्चों के बीच में रहा अवश्य उसके चित्त में घबराहट रही। घबराहट यदि साधारण होती तो वह अपने कलेजे को किसी कोने में उसे डाल कर भूल जाता किंतु आज उसकी दशा यहाँ तक बिगड़ी हुई थी कि यदि दस वर्ष का बालक भी उसके चेहरे का चढ़ाव उतार देखता तो तुरंत कह देता कि-"बाबा आज इतने घबड़ाते क्यों हो ?" वह हजार इसे छिपाने का प्रयत्न करता था परंतु ज्यों ज्यों छिपाता था त्यों ही त्यों वह दौड़ दौड़ कर आँखों की खिड़की में आ झाँकती थी और झाँक झाँक कर चुगली खाती थी कि बूढ़ा व्यर्थ ही छिपाने का उद्योग करता है।

बूढ़ा पहुँचा हुआ था। चाहे पढ़ने लिखने के नाम पर वह एक अक्षर भी न जानता हो किंतु संसार की नीच ऊँच देखने में ही उसने बाल पकाए थे। दुनियाँ का अनुभव करते करते ही उसके दाँत एक एक गिर कर जवाब दे गए थे। इस विकट घाटी पर चढ़ते समय वह अनेक बार गिरा था, कई बार गिर कर सँभला था और कितनी ही बार गिरते गिरते बच गया था। यों गिरते पड़ते जीवन के गिरिशिखर पर पहुँ-चने ही से वह जो एक दिन भगवनिया था आज बाबा भगवान

खास है। यद्यपि वह इस गाँव का जमींदार नहीं, लंबरदार नहीं, धनी नहीं किंतु अपनी बात का धनी अवश्य है। गाँव के छोटे बड़े सबही आदमियों के, शत्रु मित्र सब ही के दुःख दर्द में काम आता है, जिसे कुछ भी दुखिया पाया उसके पास बिना बुलाये आधी रात को दौड़ा जाता है और सब की भलाई के लिये पूछने पर नेक सलाह देता है, न पूछने पर भी अपने अनुभव की कहानी सुनाकर अच्छा उपदेश देता है। यों जाति का काछी होने पर भी उस गाँव के ब्राह्मणों का, राजपूतों का, बनियों का, सब ही का बाबा बना हुआ है। बूढ़े भगवान दास की भलाइयों की यहीं तक इतिश्री नहीं है। वह ब्राह्मण साधुओं का अच्छा सत्कार करता है भूखों को अन्न देता है और अंधे अपाहिजों की, लूले लँगड़ों की भरसक सेवा करता है। झूठ न बोलने की उसे सौगंद है और हज़ार काम होने पर भी उसके कम से कम दो घंटे नित्य ठाकुर सेवा में अवश्य जाते हैं।

बूढ़े बाबा को ऐसी दशा में चिंता काहे की है? इस बात का उत्तर देने के लिये अब बहुत देर ठहरना न पड़ेगा। जो कुछ होगा कचहरी पहुँचते ही प्रकाशित हो जायगा। हाँ इतना यहाँ कह देना चाहिए कि जिस समय यह अपने मन की घबराहट छिपाने के लिये, अपनी तबियत ताजी करने के लिये मुँह हाथ धोकर अपने कुटुंब से विदा हुआ, हज़ार रोकने पर भी इसके मुँह से इतना अवश्य निकल गया कि—"होम करते

में हाथ जलना इसी का नाम है।" सुनते ही सब घर वालों के चेहरे फीके पड़ गए, सब के सब भौचक से रह गए और अपनी अपनी बुद्धि के अनुसार सब ही तर्क लड़ाने लगे कि मामला क्या है? खैर इन लोगों को यहीं तर्क लगाने दीजिए!

बूढ़ा भगवानदास सिर पर एक सफेद बर्फ सी पगड़ी, एक मिरजई और धोती पहने, कंधे पर एक दुपट्टा डाले अपनी दुहरी कमर को सीधा करने के लिये थूनी से लट्ठ का सहारा लिए एक लड़के को साथ लेकर सटासट माला के मनिए खटकाता हुआ, राम राम जपता हुआ, सब की घबराहट देख कर उन्हें धीरज दिलाता हुआ वहाँ से बिदा हुआ। उसके जाने पर उसकी आज्ञा से सब अपने अपने काम पर लगे और इसने कोई डेढ़ घंटे में कोस भर चल कर तहसील की चौकी पर बरगद के पेड़ के नीचे जा कर दम लिया।

गुड़ैत मोती ने जो इसे लिवाने गया था जमादार नत्थेखाँ को खबर दी। उसने तहसीलदार साहब से इत्तिला की और साहब मानो इसीकी राह देखते हुए बैठे हों, खबर पहुँचते ही वह बुला लिया गया। तहसीलदार इसके पूर्व परिचित थे। इसके गाँव में कई वर्ष तक पटवारी रह चुके थे। उनकी कारगुजारी से प्रसन्न होकर ही अफसरों ने उन्हें दर्जे बदर्जे बढ़ाते बढ़ाते तहसीलदार बनाया था। जिस समय मुँशी मुरव्वतअली मौजे मुफ्तीपुर के पटवारी थे इस बूढ़े का बड़ा आदर करते थे और यह भी अनेक बार उनके दुख दर्द में काम

आचुका था । बस इसलिये उनकी सूरत देखते ही इसके मन को ढाढ़स हुआ । इसने मन में सोचा कि 'कुछ भी हो । अन्याय न होगा ।' खैर ! न्याय अन्याय की बात तो आगे देखी जायगी किंतु आज मुरव्वतअली साहब की आँखों में मुरव्वत का लेश नहीं दिखलाई देता । आज क्रोध के मारे उनके नेत्र लाल होकर मानो उनमें से खून टपका पड़ता है । आँखों की सुर्खी दौड़ दौड़ कर गालों पर फैलती जाती है, भौहें चढ़ कर खोपड़ी से बातें करने के प्रयत्न में हैं, गुस्से के मारे उनके होंठ फड़फड़ाने लगे हैं और आज उनके शरीर में क्रोध ने अपना मजबूत डेरा डंडा आ जमाया है । बूढ़े को देखते ही उनका क्रोध और भी भड़क उठा । इन्होंने इस भूत के आवेश में आकर पूर्व परिचय, अपने पद के गौरव और बूढ़े की सेवा को भुलाते हुए कड़क कर जामे से बाहर होते हुए कहा—

" क्यों बे पाजी ? तेरी इतनी मकदूर ?"

" हैं सरकार मैंने क्या किया ? "

" बस ख़बरदार एक लफ्ज़ भी मुँह में से निकाला तो ? तूने नहीं किया तो क्या कोई भूत कर गया ? "

" पर यह तो बतलाइए ! किसी ने क्या किया ? "

" ओ हो ! कैसा भोला बनता है ? भुस में आग डाल जमालो दूर खड़ी । बोल तैंने नहीं किया तो कौन कर गया ? "

" पर किया क्या ? "

" अच्छा सुन ! तैंने उस खेमला चमार को बहका कर

मुझ पर नालिश ठुकवा दी। कुसूर उसका था कि उसने मेरे घोड़े को पानी नहीं पिलाया। अगर इस बात पर मैंने उसको गाली भी दे दी तो क्या गजब हो गया। है तो आखिर वह चमार ही न! चमार की हैसियत ही क्या ?"

"हैं!!! आप इसलिये (मन में ही 'अच्छा हुआ मन का संदेह निकल गया') ही इतने नाराज होते हैं? पर देखिए साहब आप की गाली देने की बुरी आदत है। आप अपनी तबियत को सँभालिए। नहीं तो किसी दिन इसका नतीजा अच्छा न होगा। चमार क्या आपने अभी मुझे भी गाली दी।

"ओ हो! बड़े पंडत बने हैं? हमें नसीहत देने आए हैं। अच्छा हमने तो दी, गाली दी। अब तू हमारे ऊपर फौज चढ़ा लाना! तैने जब अँधियारे उजाले अपने गाँव के बदमाशों से हमें पिटवाने ही का बंदोबस्त कर रक्खा है तब करना। अपने जी में आवे सो करना। कसर मत रखना!"

"सरकार आपको आज हो क्या गया है? मैं गरीब गँवार आप पर फौज चढ़ाऊँगा? चिउटियों पर पंसेरी मत फेंको! जो आपको करना हो सो करलो। मेरा सिर हाजिर है। आप मा बाप हैं। किसी के बहकाने में आकर मुझ पर झूठा इलजाम मत डालो। मैं मिट्टी के आदमी का भी जी नहीं दुखाना चाहता फिर आप तो हमारे मालिक हैं। आपने हमारी बस्ती का बहुत उपकार किया है। हम जो

अपनी खाल की जूतियाँ बनाकर भी आपको पहनावें तो आप से उऋण न हों।"

"अच्छा तो (कुछ नर्म पड़ कर) बतला यह किसने किया।"

"किसी ने भी नहीं किया। किसी ने किया होतो बतलाऊँ? आपको नाहक वहम हो गया है। आप ही बतलाइए। आप को कैसे मालूम हुआ।"

"क्या कहनेवाले का नाम बतला कर उसे खराबी में डालूँ? उसकी जिंदगी भारी हो जाय? मुझ से एक आदमी कह गया है कि तैने खेमला को उसका कर अर्जी लिखवाई है।"

"सब झूठ है। सरासर झूठ है। मैंने उसे समझा कर अर्जी फड़वाई बेशक है। एक तो आप जैसे उपकार करनेवाले हाकिम की शिकायत करना ही पाप फिर जल में रहना और मगर से बैर।"

"और मैं तेरे मुँह पर एक नहीं चार आदमियों से कहलवा दूँ तब?"

"एक नहीं हजार बार (मन में सोच कर) जब मैंने किया ही नहीं तो किसका मुँह है जो मेरे लिये झूठ कहे? फिर परमेश्वर सब जगह है।"

"हैं तो बुलवाऊँ?" कह कर चपरासी को बुलाया और उनकी आँख का इशारा पाते ही वह बाहर जाकर चार आद-

मियों को ले आया। चारों में मुख्य नंबरदार का लड़का था। बूढ़े से दो नजर होते ही वह झेंपा। उन्होंने उससे बहुतेरा कहा कि-"डरो मत! साफ साफ कहो। इस बूढ़े से बिलकुल मत डरो। यह तुम्हारा कुछ नहीं कर सकता। घबड़ाओ मत मैं भी तो आज देखूँ कि यह कहाँ तक सच्चा है?' बूढ़े ने भी बहुतेरा कहा कि-" हाँ! हाँ!! घबड़ाते क्यों हो? जो कुछ हुआ हो धर्म से कहो। सच कहने में संकोच ही क्या?" परंतु बाबूलाल झेंपा सो झेंपा ही। उसकी जबान बंद। तब तहसीलदार ने उसके तीन साथियों से पूछा—"यह डर गया है तो तुम कहो रे किस तरह हुआ था। बेशक गंगा माथे लेकर सच सच ही कहना"। "हाँ! सरकार जब हुजूर गंगा जी की सौगंद दिलाते हैं तो सच सच ही कहेंगे। चाहे हमारा सिर ही क्यों न उड़ा दिया जाय सच सच ही कहेंगे। बाबा ने बेशक अर्जी फड़वाई है। अर्जी लिखवानेवाले यह नहीं। यह हमेशा झगड़े तोड़ा करते हैं। हमने कभी इतनी उमर में इनको बखेड़ा बढ़ाते नहीं देखा। आपकी गाली खाकर जब खेमला भागा तो बाबूलाल ने पास बुला कर उसे थथोपा। अपने हाथ से अर्जी लिख कर उससे उस पर अँगूठे का निशान करवाया। उसने भी नाहीं तो बहुत की थी। उस बिचारे का भी कुछ कसूर नहीं है परंतु इनके दबाव से उसने अँगूठा चिपका दिया। हमने इनसे कहा कि इस पर तहसीलदार साहब नाराज होंगे तब? यह बोले—बाबा का नाम ले देना।

वह साला बड़ा भला बनता है। उस दिन हमें ही चरस पीने पर फटकारता था। अच्छा हो जो कहीं इस डोकरे को किसी न किसी तरह थोड़ा बहुत नुकसान पहुँचे तो। यह हर एक आदमी को कल से नहीं बैठने देता। भला अगर हम चरस पीते हैं तो इसके बाप का क्या जाता है?" इन लोगों के बयान सुनकर बूढ़े ने कुछ न कहा तो न सही क्योंकि वह जानता था कि "जब इन्हीं की जबान से फैसला हुआ जाता है तब मैं क्यों बोलूँ?" किंतु बाबूलाल की आँखों में से आँसुओं की सावन की सी झड़ी लग गई। इस पर तहसील दार साहब को क्रोध आया। उन्होंने बाबूलाल को बहुत बुरा भला कहा। बूढ़े ने समझाया कि-"बेटा जो असली बात हो सच सच कह दो। यों तो मैं तुम्हारे बाप से भी बड़ा हूं और यों तुम्हारी रैयत हूं। मेरा इतना लिहाज ही क्या?" बूढ़े की ऐसी नम्रता, ऐसी सज्जनता देख कर बाबूलाल का हृदय अधिक भर आया। उसने बहुतेरा चाहा किंतु रोते रोते उसकी घिग्घियाँ बँध गईं। दस बारह मिनट रोने से जब उसका कलेजा खाली हुआ तब वह बोला।

"बेशक इन तीनों का कहना सच है। मैंने बाबा की नसीहत से चिढ़ कर (बाबा के पैर पकड़ कर उसके चरणों में सिर देते हुए) आपको इनसे नाराज कराने के लिये ही ऐसा किया था। अब मैं आप दोनों से क्षमा माँगता हूं।"

"कुसूर तो बेशक तेरा ऐसा ही है कि जिसके लिये तुझे

फौजदारी में चलान कर देना चाहिए लेकिन आज बाबा की चाल ने मुझे भी पानी कर डाला। ऐसी हालत में अगर यह मुआफी बख्श दें तो मैं भी मुआफ करने को तैयार हूँ।"

"तहसीलदार साहब, यह आप की कृपा है। मैं तो आप से पहले ही अर्ज करना चाहता था। सिर आँखों से तैयार । इस लड़के का पछताना देखकर तैयार और आप के हुक्म से तैयार।"

बस इस तरह दोनों ने जब बाबूलाल का अपराध क्षमा कर दिया तब वह हँसता हँसता अपने घर गया। उस दिन की बातों का उस पर ऐसा असर हुआ कि उसने फिर कभी गाँजा नहीं पिया, चरस नहीं पी, शराब नहीं पी और जवानी के अंधे-पन में आदमी से जितने कुकर्म बन आते हैं उन सब को छोड़ दिया। इस तरह सुधर कर जब वह लड़का वहाँ से विदा हो गया तब बूढ़ा बोला—

"एक बात मैं हुजूर से माँगता हूँ। आज से किसी को गाली न दीजिए। क्रोध सब पापों का मूल है। आप में अच्छे अच्छे गुणों के साथ यह कलंक है। जो इसे छोड़ देंगे तो आप की बहुत बेहतरी होगी। नहीं तो मैं कहे देता हूँ कि आप किसी दिन पछतावेंगे?"

"बेशक! सही है। मैंने तुम्हारे कहने के ही पहले इस बात का अहद कर लिया। अब अगर मुझे बेजा गुस्सा करते देखो तो मेरे मुँह पर थूँक देना।"

"राम ! राम !!" ज्यों ही बूढ़ा वहाँ से चलने लगा तहसीलदार ने हाथ पकड़ कर उसे कुर्सी पर बिठला लिया। जिसे एक समय "पाजी" कहा था उसी का यह सत्कार! अब भूत शरीर में से निकल गया। उस दिन से किसी ने उनको गाली देते हुए नहीं देखा। इस तरह जैसे इन दोनों को भगवानदास की अच्छी संगति का फल मिला वैसे ही अनेकों को मिला। बहुतों को उसने बिगड़ते से बचाया।

खैर! तहसीलदार ने भगवान दास को सत्कार के साथ बिठला कर गाँव के हाल चाल की बातें पूछने के अनंतर, इधर उधर की बात चीत करके, खेती की दशा और लगान वसूली के विषय में कितनी ही आवश्यक छेड़छाड़ कर लेने बाद वही असली बात छेड़ी जिसके लिये भगवानदास डरता था। सवाल छिड़ते ही बूढ़ा एक बार कुछ सहमा। सहमा अवश्य परंतु सहसा इसने अपनी दुर्बलता प्रकाशित न होने दी। इसने समझ लिया कि "जो कहीं मैं कुछ भी घबड़ाया तो यह अभी सिर हो जायगा। हज़ार भला होने पर भी है हाकिम। और हाकिम मिट्टी का भी बुरा होता है।" बस इसी तरह का मन में बिचार कर यह बिना झबड़ाए चटपट बोल उठा—

"सरकार! यह भी होम करते हाथ जलना है। ज़माने की खूबी है। मैं क्या कहूँ? आप ही समझ लें!"

"हाँ समझ लूँगा और तुम्हें आँच भी न आने दूँगा मगर मुझ से सच सच तो कहो कि मामला क्या है ?"

"सरकार, मैं हूँ तो गरीब, पर मेरी झोपड़ी पर जो कोई आता है उसकी जहां तक बनता है दाल दलिए से खातिर करता हूँ। वह मेरे यहाँ कई बार आया। मुझे उसकी बातें कुछ अच्छी मालूम हुईं। योग की चर्चा बहुत किया करता था। मैं पढ़ा लिखा तो बिलकुल नहीं पर सुनते सुनते मुझे भी कुछ ऐसी चर्चा अच्छी लगने लगी। मैंने उसमें गुण देखे इस वास्ते उसकी मैंने खातिर भी बढ़ाई। खातिर भी क्या ? वह लेने के नाम पर एक पाई तक नहीं छूता था। बस इसलिये मेरा भरोसा उस पर बढ़ गया। नतीजा यह हुआ कि एक हजार रुपए पर तो मैं रो बैठा। रपट इसलिये नहीं की कि नाहक खिचे खिचे फिरना पड़ेगा।"

"हैं ! अच्छा तो एक हज़ार रुपए का चिरका तो तुम्हें दे गया ? मगर उस बच्चे का मामला किस तरह हुआ ?"

"सरकार ! मुझे बच्चे का हाल बिलकुल मालूम नहीं। मालूम होता तो मैं हुजूर से साफ साफ कह देता। साँच को आँच बिलकुल नहीं।"

"बेशक, मगर बड़ा गजब हो गया ! अब फकीरों का भी ऐतबार गया। क्या ऐसे बदमाशों ने नेक और खुदापरस्तों को भी बर्बाद कर डाला ! मैंने सुना है कि सिर्फ पाँच रुपए के जेवर के लालच में दुलारेलाल के एकलौते बेटे को मार गया।"

"हुजूर, बच्चों को जेवर पहनाना उन्हें मौत के मुँह में देना है।"

"बेशक! क्या तुम्हारे भी इजहार हो गए?"

"हाँ सरकार! मैं लिखवा आया कि मैं इतना अलबत्ता जानता हूँ कि जब वह मेरे पास पिछली बार आया तब उसके कपड़ों पर लाल लाल दाग जरूर थे। परंतु मेरा उसपर भरोसा था। मैं उसे महात्मा समझता था इसलिये मैंने उस पर संदेह नहीं किया।"

"और तो खैर! ठीक ही है मगर तुमने इतना नाहक लिखवाया! तुम को जरूरत क्या थी?"

"तो क्या सरकार मैं झूठ बोलूं? इतने वर्ष ही न बोला तो अब तो मेरी लड़कियाँ भी मरघट में जा पहुँची। मैंने कुछ किया ही नहीं तो डरूं भी क्यों? साँच का सदा बोल बाला है।"

"शाबाश! ऐसा ही चाहिए मगर क्यों जी उस साधु का अब पता नहीं है?"

"क्या मालूम रमता राम था।"

"तुम्हारे खयाल से क्या उसी ने मारा?"

"परमेश्वर जाने साहब! मेरी थैली ले जाने की बात का जब लालदागों से मिलान किया जाता है तब तो संदेह ऐसा ही होता है!"

"तब क्या वह लालची था?"

"नहीं, बिलकुल नहीं ? जब आता था तब उसके आगे घर का जेवर, रुपए, पैसे योंही पड़े रहते थे। कभी उसने हाथ नहीं मारा। इस बार ही नियत बिगड़ गई।"

"बेशक" कहते ही सलाम करके वह अपने घर आया।



प्रकरण—१६

घबड़ाहट का अंत।

बाबा भगवानदास की घबड़ाहट देख कर उसकी स्त्री, लड़के, लड़कियां और बहुएँ, सबही पहले ही घबड़ा रहे थे, उन सब के बीच में से जिस समय एकाएक तहसील का दूत उसे लिवा ले गया तब उन्हें और भी व्याकुलता बढ़ी और एक दो, तीन और चार-इस तरह घंटे गिनते गिनते जब उसे लौटने में देरी हुई तो उन लोगों के कष्ट का ठिकाना न रहा। गाँव के भोले आदमी, यह उन्हें बिलकुल मालूम नहीं कि बुलाया क्यों है? उन सब का दारमदार केवल उस बूढ़े पर और सब से बढ़ कर यह कि उस जैसा महानुभाव, फिर यदि उन लोगों ने इस दुविधा में पड़ कर खाना पीना, काम काज और बात चीत छोड़ दी तो उन बिचारों का दोष नहीं। बूढ़े के जाने और लौट कर आने के बीच में आठ घंटे से अधिक नहीं बीते किंतु ये आठ घंटे उनके लिये आठ युग के बराबर निकले। ज्यों ज्यों समय निकलता गया त्यों ही त्यों उनकी व्याकुलता बढ़ती ही गई। उन लोगों ने मान लिया कि "ज़ुरूर किसी न किसी बहाने से बाबा को काठ में दे दिया और अब हमारा घर बार लूटे बिना न छोड़ेंगे।" बस इस तरह के अनेक संकल्प विकल्प के फंदे में फँस कर उनके घर में कुहराम मच

गया। रोना पीटना मच गया और ऐसा शोर गुल सुन कर अड़ोस पड़ोस के, जाति बिरादरी के और जान पहचान के आदमी, लुगाइयाँ इकट्ठी होने लगीं। इस कष्ट के समय आने वालों में से किसी का हियाव न पड़ सका कि भला यह तो पूछें कि तुम्हारे घर का कौन मर गया है?"

खैर जिस समय उसके घर में इस तरह रोना पीटना मच रहा था, इस तरह घरवालों के सिवाय पाँच पचास आदमी औरतें जमा हो रहे थे और जिस समय वहाँ का ढंग देखकर मालूम होता था कि घर का कोई न कोई आदमी मर गया है फिर यदि बूढ़े ने यह मान लिया कि उसका परपोता छत पर से गिर कर मर गया तो कुछ आश्चर्य नहीं। परपोता पैदा होना परम प्रारब्ध की बात है। उसी के कारण इस बुढ़ापे में बूढ़ा बुढ़िया हिंदुओं की रीति के अनुसार सोने की सीढ़ी पर चढ़े थे। भगवानदास को अवश्य ही घर के सब आदमी प्यारे थे। वह सब को समान समझता था, एक ही नजर से देखता था और सब के साथ वर्ताव भी एक ही तरह का किया करता था किंतु यह मनुष्य जाति का स्वभाव है कि जो पदार्थ जितना ही दुर्लभ हो उस पर उतनी ही प्रीति अधिक होती है। मारवाड़ी लोग बस इस लिये महँगी को प्यारी कहा करते हैं। दुनियाँ में प्रथम तो पुत्रमुख के दर्शन दुर्लभ, फिर बेटे का बेटा किस के नसीब में है? भला पोता भी एक दो के नहीं सैकड़ों के होता है और वे सब ही भाग्यवान

समझे जाते हैं किंतु परपोता ? अहा परपोता ! परपोता जिस घर में पैदा हो जाय उसके आगे तो स्वर्ग सुख भी तुच्छ है ! यही हिंदुओं का ख्याल है। पूर्वजन्म के परम पुण्यों से भगवान ने प्रसन्न होकर भगवान (के सचमुच) दास को परपोता दिया है। बस इसलिये सब से पहले इसका ख्याल उसी पर गया। किंतु ज्यों ही वह भीड़ को चीर कर भीतर पहुँचा उसे दूर से बालक खेलता हुआ नजर आया। उनके बीच में कोई लाश नहीं। तब उसने समझा कि "कहीं बाहर से किसी के मरने की खबर आई है।" मन में ऐसा संकल्प उत्पन्न होते ही उसका संदेह एक दामाद के पास दौड़ गया। वह दामाद बहुत दिनों से बीमार था। बस उसने मान लिया कि वही मर गया। ऐसा ख्याल पक्का होते ही वह अपने सिर पर हाथ मार कर "हाय ! अब क्या होगा ?" कहता हुआ गिरा। गिरते गिरते यदि उसके लँगोटिया यार पन्ना ने न सँभाल लिया होता तो इसी दम उसकी "राम राम सत्य" हो जाती किंतु उसने केवल सँभाला ही नहीं बरन कड़क कर कहा भी कि—

"कहो तो सही ! मरा कौन है ?"

बस इस तरह की आवाज सुनते ही सब का रोना बंद। एक दम सन्नाटा छा गया। सब ही एक दूसरे का मुँह ताकने लगे और थोड़ी देर में इसका जवाब कहीं से न पाकर जो आने वाले थे वे सब अपना अपना मुँह लेकर चल दिए। ऐसे जब मैदान खाली हुआ तब वह बोला—

"तुम भी आदमी हो या घनचक्कर। कोई मरा न मराया और यों ही रोना पीटना मचा दिया।" इसके बाद जब सब लोगों का संतोष हो गया तब इस खुशी में मिठाइयाँ बाँटी गईं। सब लोगों ने अपने अपने मन का संदेह कह कर उत्तर से संतोष किया। घरवाली ने पति के जाने बाद अपनी बेकली, लड़के लड़कियाँ और बहुओं की घबड़ाहट का हाल कहा, बूढ़े ने तहसील की घटना अथ से लेकर इति तक कह सुनाई। और यों थोड़ी देर में सब काम काज जहाँ का तहाँ जम गया। परंतु पन्ना का संदेह न मिटा। उसने पूछा—

"क्यों रे भगवानिया भाई? और तो जो कुछ होना था सो हो गया और जो करेगा सो राम जी अच्छा ही करेगा पर तू इस जरा सी बात पर इतना घबड़ाया क्यों?"

"वाह घबड़ाता नहीं? तेरे लेखे जरा सी बात होगी? आदमी की इज्जत भी तो जरा सी है! उस बच्चे के इलजाम में मुझे शामिल बतला कर कोई जरा देर के लिये भी मुझे कैद में देदे तो सब इज्जत धूल में मिल जाय। मेरा बुढ़ापा बिगड़ जाय। मैं मुँह दिखाने लायक न रहूँ!"

"हाँ है तो यह ठीक! पर मामला ऐसा नहीं। इसमें तेरा कसूर नहीं! तैने ऐसा किया ही क्या है जिसके लिये तेरी इज्जत बिगाड़ी जाय?"

"बेशक! पर इज्जतदार की सब तरह पर मुशकिल है। कोई झूठ मूठ भी कह दे तो फिर मैं गया दीन दुनियाँ से।"

"हाँ ! हाँ !! ठीक है ! पर तू घबड़ाना मत। जहाँ पूछे और जब पूछे तब डट के जवाब देना। और सो भी सच सच। साँच को आँच ही क्या ?"

"और साँच कहते भी मारा जाऊँ तो खुशी से !"

"बेशक !" कह कर पन्ना वहाँ से सिर पर हाथ रख कर "राम राम !" करता हुआ चल दिया और बूढ़ा भगवान दास ब्यालू करने में लगा।



प्रकरण—१७

स्टेशन का सीना ।

जब मथुरा, वृंदावन आदि चौरासी कोश की ब्रजभूमि की यात्रा से निवृत्त होकर पंडित प्रियानाथ स्टेशन पर पहुँचे तब उनकी आँखों में पानी भर आया। उन्होंने कहा कि—"यहाँ की यात्रा से निवृत्त अवश्य हुए (निवृत्त क्या हुए अभी बड़ा लंबा सफर करना है इस लिये लाचारी से निवृत्त होना पड़ा) किंतु तृप्त नहीं हुए। भगवान् यदि फिर भी कृपा करे तो एक बार जन्म सुफल करने का अवसर फिर मिल सकता है।" पंडित जी के कथन का सब ही संगी साथियों ने अनुमोदन किया और सबही की आँखों में जल छा गया। अवकाश पाकर इन लोगों की इच्छा हुई कि बार बार ब्रजभूमि के गुणानुवाद की चर्चा हो तो अच्छा, अपने कर्ण कुहरों को भी कृष्णचरितामृत पिलाया जाय तो सौभाग्य और जहाँतक गाड़ी की घंटी न बजे अपनी आँखें खोल खोल कर, फैला फैला कर इस पुण्य भूमि को निरखने के सिवाय और कुछ काम ही न करें। उस समय तक स्टेशन पर अधिक भीड़ भाड़ न देख कर ये लोग जानते थे, जानते क्या थे मन मोदक बनाते थे कि "आज खूब टाँगें फैलाकर सोने का अवसर मिलेगा।" किंतु इनके मन मोदक नहीं बूर के लडुवा निकले।

बात की बात में यात्रियों की भीड़ से, बारात वालों से और साधारण मुसाफिरों से वहाँ का मुसाफिरखाना भर गया, बाहर के मैदान भर गए और सड़क में कसामसी होकर एक्के गाड़ियों का आना जाना बंद हो गया। अब लोगों के हल्ले गुल्ले के आगे कान पड़ी बात सुनी जाना बंद, इधर से उधर और उधर से इधर फिरना डोलना बंद और जब स्टेशन पर भीड़ के मारे कोनियाँ से कोनियाँ छिली जाती हैं, जब पैरों का कुचल कुचल कर चूर चूर हुआ जाता है और जब धक्का मुक्की के आगे एक कदम भी आगे बढ़ाना कठिन है तब बहुत ही हाजत होने पर भी पेशाब पाखाना बंद और खाना पीना बंद।

सरकार की आज्ञा से, प्रजा की प्रार्थना से, अपना लाभ समझ कर रेलवे कंपनी ने अवश्य ही नगर में टिकटघर खोल दिया है परंतु शहर के थोड़े जानकारों के सिवाय उस जगह टिकट लेने जावे कौन? बिचारे अपढ़ परदेशियों को मालूम ही क्या कि दिन भर टिकटघर खुला रहता है। जब रेलवे गाइड केवल अंगरेजी के सिवाय किसी देश भाषा में नहीं छपती है और न स्टेशनों पर यात्रियों को जतला देने का कोई नियम है तब थोड़े बहुत पढ़े लिखे यात्री भी इस बात को नहीं जान सकते। और जो अंगरेजी पढ़नेवालों ने जाना भी तो उनकी संख्या समुद्र में बूँद के समान। तीस करोड़ भारतवासियों में केवल तीन लाख। बस इस लिये इतनी भीड़ में से सौ दो

सौ के सिवाय सब ही जैसे भगवान के दर्शन के लिये मंदिर के किवाड़ खुलने की राह देखते भक्त जन एकटक से एकाग्रचित्त होकर खड़े रहते हैं उसी तरह सब ही मुसाफिर खड़े हैं और खड़े खड़े खिड़की की ओर निहार निहार कर हड़बड़ाते जाते हैं, अकुलाते जाते हैं और घबड़ाते जाते हैं।

बस थोड़ी देर में टिकट बटने की घंटी के साथ ही खिड़की खुली। जो लोग हट्टे कट्टे मुस्टंडे थे, जो धक्का मुक्की से भीड़ को चीरते हुए आगे बढ़ कर घंटा भर पहले ही से जा खड़े रहे थे वे अवश्य ही जीत में रहे। यदि अधिक भीड़ देख कर एक ही जगह दो चार खिड़कियाँ एक साथ खोल दी जातीं तो सब लोगों को टिकट मिल सकते थे किंतु आज टिकट ले लेना जान की बाजी लगाना था। बलवान दुर्बलों को, अबलाओं को और बालकों को दबा कर, उनके हाथ पैर कुचल और उन्हें अपने शरीर के बल से पीस पीस कर आगे बढ़ते थे और जहाँ तक बन सकता था टिकट पाते भी थे। किंतु आज अंधे अपाहिजों की, लूले लँगड़ों की, स्त्री बालकों की बड़ी मुश्किल थी, यद्यपि भीड़ को हटाने में, गुलगपाड़ा बंद करने में और डाँटने डपटने में पुलिस ने कमी नहीं की। जहाँ ललकारने, फटकारने से काम चल सका वहाँ ललकार फटकार कर और जहाँ डंडा मारने की आवश्यता हुई वहाँ डंडा मारकर उसने रोका भी, किंतु आज टिकट घर की ओर नरमुंडों का समुद्र उलट रहा है। भीड़ में से एक दूसरे की

लात से, घूँसे से पूजा कर के आगे बढ़ता है तो दूसरे ने गालियों के गोले चलाने ही में बहादुरी लूटनी चाही है। बस इस तरह कहीं हल्ला, कहीं गाली और कहीं-"हाय मरा! अरे मरी! हाय जान निकली जाती है! अरे मेरा लाला! हाय लाला को बचा-इयो!" की आवाज, चिल्लाहट, आर्तनाद कलेजे को फाड़े डालता है।

यात्रियों के कष्ट की आज इतने ही में इतिश्री नहीं है। गहरी गर्मी और कड़ी धूप के बाद बादलों ने दिशा विदिशाओं को चारों ओर से घेर कर दुपहरी में आकाश को काला करके, संसार में उजियाला करने वाले जटायु और संपाती के पर जलाकर उनके अभिमान का चकनाचूर करनेवाले और अपनी प्रखर किरणों से दुनियाँ को तपा देनेवाले; जला डालने का घमंड रखनेवाले भगवान भुवनभास्कर का घमंड दूर करने ही के लिये अपनी गोद के बालक की तरह उन्हें छिपा लिया है और इसलिये जो नामी कवि हैं उन्हें एक अद्भुत उपमा दिखा देने का अवसर हाथ आया है। भला "बेटे की गोदी में बाप" ऐसा सीन यदि किसी ने उमर भर न देखा हो तो आज देख ले। क्योंकि बादल जब सूर्य नारायण से पैदा होते हैं तब उनके बेटे हैं ही। अस्तु भर दुपहरी में बादलों ने एक ओर सूर्य को छिपा कर जब दिन में चिराग जलाने की नौबत आने का अवसर उपस्थित कर दिया है तब थोड़ी बहुत बूँदे डाल कर कंजूस दानी की तरह उमस लोगों

को जुदी ही मारे डालती है। ऐसी दशा में यदि बिचारे यात्री व्याकुल हो जाँय तो उनका दोष ही क्या ?

किंतु क्या उन्हें केवल इतना ही दुःख है? भारतवासी अनेक शताब्दियों से कष्ट भोगने के आदी हैं, अभ्यस्त हैं और यह कष्ट भी अधिक देर का नहीं, इसलिये थोड़ी देर यदि जी कड़ा कर लें तो इसे भुगत भी सकते हैं परंतु एक दुःख सब से भारी आ पड़ा। इस जगह की ऐसी दुर्दशा देख कर चोरों की, उठाईगीरों की और जेबतराशों की भी जीभ लपलपाने लगी। उनकी आज खूब ही बन आई। "बस आज गहरे हैं! जितना बन सके खूब लूटो! इस कसामसी के समय किसी की कोई सुननेवाला नहीं है।" बस इसी विचार में उन लोगों ने खूब हाथ मारने का लग्गा लगाया। "वह गठड़ी ले भागा! अरे मेरी जेब? हाय मैं क्या करूँगा? अब टिकट के लिये पैसा तक नहीं। अजी किसी ने मेरी नथुनी खैंच कर नथुना तक फाड़ डाला। हाय कान की बालियाँ खैंच ले गया। देखो जी खून टपक रहा है। हाय मेरे सोने के बटन! यह देखो! यह देखो! मेरा चंद्रहार तोड़ ले गया। पकड़ो पकड़ो? खड़े खड़े क्या ताकते हो? मर्दों में नाम धराते हो? पकड़ो। तुम्हारे सामने से ले भागा और तुम से कुछ भी करते धरते नहीं बना तब तुम काहे के मर्द!" इस तरह की बात चीत से, रोने चिल्लाने से और हाय हाय करने से इस भीड़ में एक नई

हल चल पैदा हो गई है। परंतु किसी की ताब नहीं जो इन बदमाशों को पकड़ सके।

यद्यपि पंडित प्रियानाथ और उनके साथियों को भी मर्दूमी का दावा है परंतु आज उनकी भी सिट्टी गुम। शहर के टिकट घर से अवकाश के समय टिकट न खरीद लाने पर पंडित जी छोटे भैया से नाराज होते हैं, सामान की रक्षा करने के लिये भोला कहार को, स्त्रियों को और बूढ़े बाबा को बार बार सचेत करते हैं और आगे के लिये लोगों को ऐसा कष्ट न उठाना पड़े इस लिये मन ही मन कुछ उपाय भी सोचते हैं किंतु आज इन से एक कदम भी वहाँ से डिगना नहीं बन सकता। "टिकट इंटर का लेना, अथवा थर्ड का" इस सवाल को हल करने के लिये दोनों भाइयों में खूब उलझा उलझी हुई। भीड़ को देखकर कांतानाथ की यहाँ तक राय थी कि "भाई भौजाई के लिये यदि सेकंड का टिकट भी ले लिया जाय तो अच्छा।" किंतु "आज सेकंड में जगह मिलनी असंभव है क्योंकि कई लोगों ने पहले ही से रिजर्व करा लिया है और इस भीड़ को देखते हुए जैसा इंटर वैसा ही थर्ड! फिर वृथा पैसा क्यों फेंकना? इंगलैंड के वजीर मिस्टर ग्लैडस्टन जब अनुभव प्राप्त करने के लिये कभी कभी थर्ड क्लास में सफर किया करते थे तब हम कौन से धनवान हैं?" इस तरह कह कर इन्होंने आँख के इशारे में प्रियंवदा से पूछा और आँख के संकेत से ही जब उसने उत्तर दे दिया कि—"जैसी

आपकी इच्छा' तब थर्ड क्लास का टिकट ही लेना ठहरा और कांतानाथ और गोपीवल्लभ दोनों किसी न किसी उपाय से टिकट भी ले आए। इस उपाय से ऐसा न समझना चाहिए कि किसी को कुछ दे दिला कर ले आए। बेशक इन्हें एक दो आदमी ऐसे भी मिले थे जो खर्च करने पर "बुकिंग आफिस" के भीतर जाकर टिकट ला देने को तैयार थे किंतु ऐसे टिकट मँगा लेने के लालच से शायद धोखे में आकर अपनी पूँजी भी गँवा बैठें तो क्या आश्चर्य। किसी किसी ने इनसे यहाँ तक सलाह दी थी कि पुलिस को कुछ दे दिला कर खिड़की के पास पहुँच जाना किंतु रिशवत देना और रिशवत लेना दोनों ही बुरे। ये दोनों भाई भी कहीं के किसी उहदे पर थे और हजारों के वारे न्यारे का अनेक बार अवसर आने पर भी इन्हें इन दोनों बातों से जब सौगंद थी तब कांतानाथ और गोपीवल्लभ ने पंडित पंडितायिन और बुढ़िया के हजार मना करने पर भी भीड़ में प्रवेश कर दिया। इन्होंने बहुतेरा कहा कि "आज भीड़ अधिक है तो कल सही।" परंतु दोनों ने इस बात पर बिलकुल कान न दिया।

ऐसी गहरी भीड़ में घुस पड़ने से इनके रुपए पैसे के लिये खूब छीना झपटी हुई, वहाँ की रेल पेल से इनका शरीर पिस कर कुचल कर और लात घूंसे से चकना चूर भी हुआ और दोनों अपने अपने साफे भी खो आए किंतु वापिस आए और जान पर खेल कर टिकट लेकर आए। इस तरह दोनों जने

जब टिकिट लिए हुए हाँपते हाँपते घबड़ाते घबड़ाते पंडित जी के पास पहुँचे तो उन्होंने छाती से लगा कर दोनों को शाबसी दी, इनकी प्रशंसा करके इनका मन बढ़ाया और पंडिताथिन ने पंखा झल कर इनको शांत किया।

ऐसे टिकट हाथ इनके अवश्य आगए किंतु टिकट मिलते ही ट्रंक गायब। ट्रंक किसका था? प्रियंवदा का। उसी के कपड़े लत्ते उसमें रक्खे थे। कपड़े लत्ते होंगे कोई पाँच छः जोड़ी। चार पाँच किताबें और शीशा, काजल, कंघी, रोरी, डोरी, सिंदूर आदि श्रृंगार और सौभाग्य की सामग्री। ले भागनेवाले पर सब से पहले नजर भोला कहार की ही पड़ी क्योंकि यह उसी के चार्ज में था और इसमें प्रियंवदा की प्यारी चीजें रक्खी हुई थीं इसलिये वह भी बार बार इसे सँभालती जाती और भोला से ताकीद करती जाती थी। उठाईगीर को इसे उठाकर ले भागते देखकर भोला चिल्लाया बहुत परंतु अपने आसन से उठकर एक इंच भी न टला। 'यह गया! वह गया!! ले गया।' की आवाज कान पर पड़ते ही कांतानाथ और गोपीवल्लभ खड़े हुए किंतु अभी तक इनकी पहली घबड़ाहट मिटी नहीं थी इस लिये इनके पैर लड़खड़ाने लगे। बूढ़े भगवानदास की नसों में जोश आते ही बासी कढ़ी में अवश्य उबाल आया किंतु "कहीं मर रहोगे! जाने दो ले गया तो!" कहकर बुढ़िया ने उसकी टाँग पकड़ ली। अब पंडित जी की पारी

आई। प्रियंवदा ने उन्हें बहुतेरा मना किया, अपने गले की सौगंद दिलाई, झुँझलाई, रिसाई और हाथ पकड़ कर उन्हें बिठला देने का भी उसने प्रयत्न किया। "ले गया तो क्या नसीब ले गया? भगवान तुम्हें प्रसन्न रक्खें। जो कुछ है तुम्हारी ही बदौलत है। मैं नहीं जाने दूँगी। ऐसी भीड़ में नहीं! अजी हाथ जोड़ती हूँ! नहीं! पैरों पड़ती हूँ नहीं!!" इत्यादि वाक्यों से पति को रोका किंतु उन्होंने इस समय इसकी एक भी बात पर कान न दी।

इन्होंने भीड़ को चीरते, छलाँग भरते, धक्के खाते और धक्के देते हुए "यह लिया! वह लिया! पकड़ लिया!" करके कोई पचास कदम के फासले पर उसे जा ही तो पकड़ा। एक हाथ में ट्रंक लटकाए और दूसरे हाथ से गर्दन पकड़े उसे धकियाते धकियाते यह सीधे पुलिस की चौकी में पहुँचे। वहाँ जाकर इन्होंने पहले उस चोर को दारोगा के हवाले किया। उसने हथकड़ी भरी और तब उनके नाम का कार्ड उनके हाथ से थाँभा। कार्ड हाथ में लेकर पढ़ते ही उसने इनकी ओर खूब निहार कर देखा और पहचाना। तब मुजरिम और माल की रसीद ले अपने पते का संकेत दे अपने ही हाथ से अपना लिखा हुआ बयान देकर पंडितजी अपने संगी साथियों में आ शामिल हुए। सब देखते के देखते ही रह गए कि यह मामला क्या है? ऐसी इनमें कौन सी करामात थी जो पुलिस से इनका इतनी जल्दी छुटकारा हो गया।

इतने अर्से में "गाड़ी छोड़ा" के गगनभेदी शब्द के साथ ही टिकट कलक्टर महाशय प्लेटफार्म पर जाने के फाटक पर आकर खड़े हुए। इन महाशय का रंग रूप दिखलाने से कुछ मतलब नहीं। जो साहब लोगों के से कपड़े पहन लें वे ही साहब, फिर यह ठहरे टिकट कलक्टर! कलक्टर, हाकिम जिला से इनके उहदे में एक शब्द अधिक है। वह अपने इलाके के राजा होने पर भी कानून के विरुद्ध एक पत्ता नहीं हिला सकते तब यह मुसाफिरों के मा बाप, कर्ता धर्ता विधाता। अस्तु। धक्कामुक्की से यात्रियों की जैसी खराबी मुसाफिर खाने में थी वैसी ही, उससे कहीं बढ़ कर यहाँ हुई। खैर! होनी थी सो हुई। उस दुर्दशा का वर्णन करने में कहीं पंडित जी यहीं पड़े रह जाँय और गाड़ी में उन्हें जगह न मिले अथवा उनके पहुँचते पहुँचते ही गाड़ी चल दे तो अच्छा नहीं, इसलिये जैसे तैसे उन्हें किसी न किसी तरह प्लेट फार्म पर पहुँचा ही देना चाहिए।

इसी संकल्प से एक महाशय ने भीड़ में से निकल कर पंडित जी से कहा—"इस गड़बड़ में आप लोगों का पार पाना कठिन है। आप चाहें तो मैं आपको सेकेंड क्लास के फाटक से होकर गाड़ी में जा चढ़ाऊँ।" वह बोले—"नहीं! जैसे बने वैसे हमको इसी फाटक से घुसना चाहिए। हमारे पास टिकट भी थर्ड क्लास के हैं।" उसने कहा— "थर्ड क्लास के हैं तो कुछ चिंता नहीं। उस फाटक में होकर

भीतर जाने से आप का कुछ खर्च न होगा और अब मैं आपके साथ हूँ तो कोई आपको रोकेगा भी नहीं।" तब पंडित जी ने पूछा-"परंतु हम अनजान के साथ इतनी कृपा दिखाने से आप का मतलब ?" वह बोला—"मतलब यही कि आप जैसे भले आदमी कष्ट से बचे (मन में-" प्रियंवदा की कोमल कलाइयाँ कहीं कुचल न जाँय ")-इसके अंतिम शब्द यद्यपि किसी ने सुने नहीं, यद्यपि कोई उसके मुख के भाव से भी न जान सका कि इसकी नियत खराब है परंतु अब मन का साक्षी मन है, जब प्रियंवदा पहले पति से कह चुकी थी कि पराये के बुरे या भले हृद्गत भाव को पहचान लेने की स्त्रियों में शक्ति होती है तब उसने अवश्य ही इसे पहचाना और पहचानते ही इसका माथा ठनका। उसने बहुतेरा चाहा कि "प्राणनाथ से हाथ पकड़ कर कह दूँ कि इस पापी के उपकार के बोझ से लदना भी पाप है।" परंतु उसी के आगे उसकी नजर बचाकर न तो पति को सैन से समझाने का ही उसे अवसर मिला और न स्पष्ट कह देने की उसे हिम्मत हुई। बस इसलिये उसने लंबे घूंघट से मुँह छिपा कर उसकी ओर से मुँह फेर लेने के सिवाय जब कुछ भी न कहा तब पंडित जी के संगी साथी एक दम बोल उठे—"हाँ! हाँ! इसमें क्या चिंता है ? इसमें क्या हानि है ?" पंडित जी किसी से ऐसी अनुचित सहायता पाने में प्रसन्न नहीं हुए परंतु उस समय सब की इच्छा को रोक भी न सके। इस तरह

वह मनुष्य जब सब लोगों को लेकर सेकंड क्लास के फाटक की ओर रवाना हुआ तब हजार रोकने पर भी अनायास धीरे से प्रियंवदा के मुख से निकल गया—

"निपूता यहाँ भी आमरा ! मुँडीकाटा उपकार करने आया है ? भेड़ की चाल में भेड़िया ! "

अवश्य ही पंडित जी किसी उधेड़ बुन में लगे हुए थे। वह सुनते तो अपनी प्यारी के हृदय के भाव को जान सकते थे क्योंकि दंपति के मन में टेलीफोन लगा हुआ था। उन्होंने प्रियंवदा के कथन को कुछ नहीं सुना और औरों ने कुछ ध्यान नहीं दिया।

अस्तु ! जिस समय ये लोग मुसाफिरखाने से रवाना हुए यात्रियों की वास्तव में बहुत दुर्दशा थी। वे लोग घोर असह्य संकट में थे। भीड़ के ऊपर लिखे हुए कष्ट के सिवाय जब सब ही सब से आगे निकल जाने के यत्न में थे तब मार कूट का क्या कहना ? टिकट कलक्टर किसी का बोझ अधिक बतला कर रोकता था, किसी के बालक का कटा टिकट न होने पर उसे धमकाता था और किसी का टिकट देखकर यों ही ठहरा देता था। प्रयोजन यह कि उस जरा से फाटक में होकर निकलते कम थे और इकट्ठे अधिक होते जाते थे। ऐसे समय यदि कुलियों को देकर, कर्मचारियों की मुट्ठी गर्म करके, किसी की खुशामद और किसी को कुछ दे दिलाकर मुसाफिर आराम से गाड़ी पर सवार हो

आँय तो उन्हें वह अखरता नहीं है और न वे कभी इस बात की किसी से शिकायत करते हैं। खैर! जैसे तैसे जो यात्री गाड़ियों तक पहुँचने पाए वे एक एक कंपार्टमेंट (दर्जा) घेर कर वहाँ के राजा बन बैठे। आराम से बैठने और पैर फैला कर सोने के लालच से उन्होंने अपने अपने दर्जे की खिड़कियाँ बंद करली हैं, उनमें से मोटे मुसंडे बाहर खड़े होकर आनेवाले से "आगे जाओ! यहाँ जगह नहीं है!" कहकर टालते हैं और जो जबर्दस्ती करता है उससे मरने मारने को तैयार होते हैं। आज कहीं इसलिये गाली गुफ्ता होता है और कहीं मार कूट की भी नौबत आ पहुँची है। मुसाफिर इधर से उधर और उधर से इधर अपना बोझा लेकर भागते हैं। बोझा भी बेहद। एक एक आदमी के पास चार चार आदमी का। इसके सिवाय कोई एक दो बालकों से लदी हुई है और कोई बुरका ओढ़े या घूंघट ताने इधर उधर जूतियाँ चटकाती फिरती है। "गाड़ियाँ सब भर गईं। खचा-खच भर गईं! तिल धरने को भी जगह नहीं।" की आवाज आते ही स्टेशनवालों ने किसो दर्जे में आठ की जगह दस, दस की जगह बारह पंद्रह तक भर दिए और फिर भी जो मुसाफिर बच रहे वे भेड़ बकरी की तरह माल गाड़ियों में ठूंस दिए गए।

उस आदमी की बदौलत पंडित जी और उनके साथी यद्यपि फाटक की वेदना से बच गए परंतु इन सब को एक

जगह मिलकर बैठने की जगह नहीं मिल सकी। पंडित प्रिया-नाथ को थर्ड क्लास में जगह न होने से इंटर मिला। मर्द मर्द सब अपने अपने मन माने जहाँ जिसे जगह मिली घुस बैठे। बूढ़े भगवान दास को भी हाथ पकड़ कर उस आदमी ने बिठला दिया किंतु बुढ़िया और प्रियंवदा को स्टेशन पर इस छोर से उस छोर तक दो तीन बेर घुमाने के अनंतर एक जनानी गाड़ी में जगह दी और सो भी दोनों के बीच में तीन कंपार्टमेंट का अंतर! तब यह प्रियंवदा से बोला—"क्यों सरकार आपको तो अच्छी जगह मिल गई ना! दास को भूलना नहीं।" और उत्तर में प्रियंवदा ने—"तेरा सिर! निपूता यहाँ भी आ मरा!" कहते हुए अपना मुँह फेर लिया और उसी समय सीटी देकर "धक धक" करता हुआ गाड़ियों को इंजिन ले चला।

प्रकरण—१८

प्रियंवदा से छेड़छाड़ ।

जिस समय सीटी देकर मथुरा स्टेशन से गाड़ी रवाना हुई "जमुना मैया की जय!" का गगनभेदी शब्द ट्रेन के हर एक दर्जे की खिड़कियों में से निकल निकल कर दिशा विदिशाओं में व्याप्त हो गया। उस गाड़ी में जो नास्तिक थे भिन्न धर्मी थे, आर्य्य समाजी थे, नेचरिये थे वे हिंदुओं को मूर्ख बतला हँसे भी किंतु "जो मनुष्य के हृदय में आँतरिक भक्ति है, उसके मन का भीतरी भाव है उसका इस तरह एक समुदाय में संयुक्त होकर प्रकाशित होना किसी समाज में, किसी देश में बुरा नहीं माना जाता। बुरा नहीं अच्छा है और "हिप् हिप्! हुर्रे!" से हजार दर्जे अच्छा है। जिन लोगों के हृदय में सच्ची भक्ति है वे ऐसे पवित्र शब्दों को श्रवण कर गद्गद होते हैं, जो मन के बोदे हैं उनकी भक्ति दृढ़ होती है और जो बिलकुल ही कोरे हैं उनके अंतःकरण में भक्ति का संचार होता है।" ऐसाही उत्तर देकर पंडित प्रियनाथ ने अपने साथी मुसाफिरों को शांत किया।

जिस समय तक मथुरा स्टेशन से गाड़ी रवाना न हुई हर एक दर्जे के मुसाफिर आपस में लड़ते रहे। कहीं गाली गलौज और कहीं धक्का धक्की तक की नौबत आई। जो पहले

से जा घुसे थे उन्होंने अपना सामान पटड़ियों पर लाद दिया और बैठे भी पाँव फैलाकर आराम से किंतु जो पीछे आने वाले थे उन्हें बैठने के लिये चार अंगुल जगह नहीं। यदि कोई मुठमर्दी करके दूसरों के बीच में घसमसा कर आ बैठा तो उसे दोनों ओर से दबा दबा कर लोग पीस रहे हैं और जो साहस हीन होकर अपना बोझा हाथ में उठाए खड़ा है तो खड़ा ही जा रहा है। कोई उससे कहनेवाला नहीं है कि-"भाई जब तैंने भी किराया हमारी तरह दिया है तो तू बैठ क्यों नहीं जाता ?" यात्रियों की स्वार्थपरायणता का भी कहीं ठिकाना है ? इधर रेलवे कर्मचारियों ने जब आठ की जगह दस, बारह, पंद्रह तक, भेड़ बकरी की तरह ठूँस दिए हैं तो मुसाफिर भी उनके उस्ताद हैं कोई "अइस मा बाप !" कह कर भँगी बन जाता है और इस तरह अपने दर्जे में से और मुसाफिरों को भगाकर अपनी इकढंकी बजाना चाहता है। तब गोश्त की रकाबी फैलाकर कोई अपने आराम के लिये अपने साथियों को तंग कर रहा है। धार्मिक हिंदुओं को डरा कर, सता कर और दिक करके आराम लूटने वालों नीचों की भी आज कल कमी नहीं है किंतु इस तरह मेहतर न होने पर भी जो मेहतर बनते हैं वे मेहतरों के भी मेहतर हैं। खैर। गाड़ी रवाना होते ही आपस का सब लड़ाई झगड़ा, सब कसा-कसी और सब धक्का धक्की मिट कर अब भाई चारा आरंभ हुआ। अब बात चीत, घुट घुट कर बातें, बीड़ी बाजी और

गप्प शप्प होने लगी। थोड़ी देर पहले जो एक दूसरे के कट्टर शत्रु थे अब दूर दूर का संबंध दूर दूर की जान पहचान निकाल निकाल कर आपस में मित्र बन गए।

अगले स्टेशन पर गाड़ी ठहरते ही बाप की सेवा करने और उसे कष्ट से बचाने के लिये गोपीवल्लभ अपने दर्जे में से उतर कर जगह न होने पर भी बूढ़े भगवानदास के पास जबर्दस्ती जा ठुंसा और कांतानाथ भी लपका हुआ भाभी के पास गया। वहाँ जाकर देखता क्या है कि उस दर्जे में आठ दस मुसलमानियों के बीच केवल प्रियंवदा ही ब्राह्मणी है। दर्जे में कहीं बाल बच्चों का पाखाना पेशाब पड़ा है और माँस रोटा फैला फैला कर उसकी साथिनें खाती जाती हैं और साथ ही इसे हँसती भी जाती हैं। बुढ़िया तीसरे दर्जे में बैठी हुई इनसे खुशामद करती और समझाती है तो कभी उसे आँख देखाती और कभी हँस हँस कर तालियाँ पीटती हैं। प्रियंवदा कष्ट के मारे व्याकुल होकर खिड़की के सहारे खड़ी खड़ी रो रही है और पायदान पर खड़ा हुआ एक मनुष्य "जान साहब! रोओ मत! तुम्हारे रोने से मेरा कलेजा फटा जाता है। ज़रा नीचे आजाओ तो मैं अभी तुम्हें पहले दर्जे में जा बिठलाऊँगा। वहाँ से मेरा दर्जा भी पास है। तुम्हें कष्ट नहीं होने दूँगा। मुझे अपना दास समझो।" कहता जाता है और उसकी ओर देख कर, घूर कर मुस कराता जाता है। इधर उधर देख कर लोगों की नजर बचाता हुआ कभी अपने रूमाल से आँसू

पोंछना चाहता है तो कभी उसकी आँखों से अपनी आँखें उलझाने का प्रयत्न कर खिड़की की चाबी खोलता हुआ उसकी कोमल कलाई को अपने हाथों का सहारा देकर उतारने का उद्योग करता है। उसका मन उछल उछल कर बाहर आता जाता है और उसकी आँखें कह रही हैं कि हम दूसरी गाड़ी में लेजाने के लिये मखमल बनने को तैयार हैं ताकि तुम्हारे पैरों में स्टेशन की कंकरियाँ न गड़ें और पहले दर्जे में गद्दी तकिये पर तुम्हारे साथ हमें भी आराम करने का सौभाग्य प्राप्त हो।

यह कुछ भी बकझक करता रहे प्रियंवदा रोने के सिवाय-रो रो कर अपने गोरे गुलाबी गालों के ऊपर से आँसुओं की धारा बहाकर अपनी अँगिया भिगोने के सिवाय और बीच में हिचकियाँ भरने के सिवाय चुप। अब इस आदमी से रहा न गया। इसने तुरंत ही अपनी जेब में से प्रियंवदा के आँसू पोछने के लिये रुमाल निकाल कर " जान साहब रोओ मत !" कहते हुए ज्यों ही हाथ फैलाया प्रियंवदा ने पीछे हटते हुए-और " चल निगोड़े दूर हो। यहाँ भी आमरा!" कहते हुए अपने कोमल कोमल हाथों से इसको एक हलका सा धक्का दिया और उसी समय कांतानाथ ने " भाभी डरो मत ! मैं आ पहुँचा।" कहते हुए उस आदमी की टाँग पकड़ कर नीचे गिरा दिया। गिरा कर दस बीस गालियाँ दीं, पाँच सात लातें मारी और उसी समय गाड़ी रवाना होने की तीसरी घंटी की आवाज

सुन कर भागा हुआ गाड़ी चलदेने पर लपक कर पायँदाज पर आ चढ़ा और चाबी बंद पाकर मुसाफिरों के धक्के देने पर भी मार की कुछ पर्वाह न कर खिड़की की राह जिस समय इसने दर्जे में बैठते हुए बाहर को देखा तो वह आदमी भी अपनी धूल झाड़ कर अपने दर्जे में जा बैठा। सब देखते के देखते ही रह गए कि मामला क्या है ?

जब पहले खिड़की के पास खड़ी हुई प्रियंवदा रो रही थी और वह आदमी इसकी ओर हँस हँस कर कुछ कहता जाता था तब इसकी साथिनें समझे हुए थीं कि इन दोनों का आपस में कुछ लगाव है इसलिये वे चाहती थीं कि यदि यह अपने आप न उतर जावे तो अपने आदमियों से कह कर इसे उतरवा देना चाहिए किंतु इस घटना से वे जान गईं कि उस आदमी की बदमाशी है इसलिये उनकी घृणा अब सहानुभूति में बदल गई और उन्होंने आराम से बैठने की इसे जगह भी देदी। इस घटना के बाद दो तीन स्टेशनों से होकर गाड़ी बिना ठहरे ही निकल गई। इस कारण न तो कांतानाथ ही भाई साहब से खबर देने जा सका और न किसी को प्रियंवदा के पास आकर उसकी संभाल पूछने का अवसर मिला। हाँ ! उस आदमी की इतनी मारखाने पर भी तृप्ति न हुई। वह फिर भी चलती गाड़ी में बाहर ही बाहर पायंदाज पर चलता हुआ गाड़ियों को पकड़े पकड़े इसके पास आकर खिड़की में मुँह डाल कर फिर न मालूम क्या

कह गया जिसे सुनकर वह एक बार खूब खिलखिला कर हँस पड़ी, फिर घबड़ाई, कांप उठी, रोई और डर के मारे पसीने में सराबोर हो गई। चौथे स्टेशन पर गाड़ी ठहरते ही जब फिर कांतानाथ ने इसे आकर सँभाला तो उसकी बहुत बुरी दशा थी। रोने के मारे इसकी हिचकियाँ बँध रहीं थीं। यह रो धोकर देवर को अपना दुःख सुनाना चाहती थी किंतु इसके मुँह से पूरा एक शब्द भी नहीं निकलने पाता था। इसका कलेजा जोर जोर धड़क रहा था और आँसुओं से, पसीने से इसकी अँगिया, इसकी साड़ी भीग कर तर हो रही थी। इसने जब बहुतेरा जोर मारा तो "भैया! हुद् मुझे! हुद् बचाओ! हुद्!" कहती हुई देवर के कंधे से सिर लगा कर मूर्च्छित हो गई। अच्छा हुआ जो कांतानाथ ने इसे सँभाल लिया नहीं तो किवाड़ से टकरा कर माथा फट जाता। खैर "हैं! हैं!! भाभी इतनी घबड़ाती क्यों हो? अब मैं आगया! अब तुम्हारा कोई बाल भी बाँका नहीं कर सकता।" कह कर उसने बहुतेरा इसे प्रबोधा और गोपीबल्लभ से खबर पाकर पंडितजी भी एक ही मिनट में आ पहुँचे। आँख खुलते ही "अब मेरे जी में जी आया।" कहती हुई यह बाहर निकली और एक बार शर्म लाज को ताक में रखकर पति से चिपट गई। जब इसे पूरा होश आया तो यह शर्माई और लंबा घूंघट निकाल कर उनके साथ, उन्हीं के पास मर्दानी गाड़ी में जा बैठी।

एक, दो, तीन, चार करते करते कितने ही स्टेशन निकल गए, कितने ही घंटे गुजर गए परंतु भीड़ भाड़ में न तो पंडित जी को ही इससे पूछने का अवसर मिला कि मामला क्या था ? और न लाज के मारे यही उनसे कहने पाई कि "निपूता फिर आ मरा" अस्तु यों चलते चलते जब रात के दस ग्यारह बजे एक एक करके इनके दर्जे के सब मुसाफिरों के उतर जाने से मैदान सूना हुआ तब इसने 'अथ' से लेकर "इति" तक सारा किस्सा, आज की सारी घटना कह सुनाई। साथ में यह भी कह दिया कि "विश्रांत घाट पर आवाजा फेंकने वाला यही था, उस समय हमारी मदद के लिये यही पुलिस को लिवा कर लाया, इसी ने सेकेंड क्लास के फाटक में हो कर स्टेशन पर पहुँचाया और निपूता फिर आ मरा। इस तरह इसने पति से जो कुछ हुआ था वह सारा का सारा सत्य सत्य कह दिया। एक बात भी घटा बढ़ा कर नहीं कही। नमक मिर्च बिलकुल न लगाई किंतु न मालूम क्यों यह उस बात को छिपा गई, जिसे उस आदमी के मुख से सुनते ही यह एक बार खिलखिला कर हँसी और फिर रोई थी। प्रियंवदा जैसी पतिव्रता स्त्री यदि पति से कोई बात और सो भी पर पुरुष की कही हुई इस तरह कही हुई जिसे सुनकर यह हँस पड़ी छिपा जावे तो अवश्य उसके चरित्र पर संदेह होना चाहिए। जब इस बात को पंडित जी सुनेंगे तब उन्हें भी संदेह होगा अथवा वह प्रियंवदा की

तरह खिलखिला कर हँस पड़ेंगे सो अभी संदिग्ध ही है। खैर! अब इस तरह प्रियंवदा अपना सारा दुखड़ा रो चुकी तब पंडित जी ने प्राणप्यारी के कान से मुख लगा कर कहीं कोई सुन न ले इस भय से इधर उधर देखते हुए घुस पुस घुस पुस कुछ कहा और "सब से बढ़ कर यही उपाय है!" इस तरह कहते कहते मुसकरा कर अलग हट बैठे। दो तीन मिनट में "हाँ! एक बात और याद आई!" कह कर उन्होंने फिर प्यारी के कान में कुछ कहा, कुछ हँसते हँसते कहा किंतु वह पूरा नहीं कहने पाए। उनकी बात बीच में से काठ कर—"वाह जी! बस बहुत हुआ! बस बस! बहुत! दिल्लगी मत करो! ऐसा कहोगे तो मैं मर जाऊँगी!" कहते हुए प्यार के साथ एक हलका सा धक्का देकर "चलो हटो एक तर्फ!" कहते हुए पहले कुछ तिउरियाँ चढ़ाकर क्रोध दिखलाया और फिर हँस कर वह अलग हो बैठी।

इस अर्से में इनका खाली दर्जा फिर मुसाफिरों से भरने लगा। इनकी बात चीत प्रेमसंभाषण अथवा प्रेमकलह बंद हुई। पंडित जी को अवश्य रंज रहा कि वह अपनी रूठी रानी, को मनाने भी नहीं पाए किंतु थोड़ी ही देर में "इलाहाबाद! इलाहाबाद!" की आवाज के साथ ही स्टेशन के प्लेटफार्म पर आकर गाड़ी खड़ी हो गई। पहले जैसे गाड़ी में सवार होने के समय हडबड़ी मची थी वैसे ही अब उतरने के लिये उतावल है। बस एक दो और तीन

मिनट में बूढ़ा, बुढ़िया, कांतानाथ, गोपीवल्लभ, भोला और गौड़बोले अपना अपना असबाब लिए हुए पंडित जी के पास आ खड़े हुए। सब सामान सँभाला गया तो एक ट्रंक कम। "बस भोला के चार्ज में से गया।" कहकर पंडित जी ने उसे लाल लाल आँखें दिखलाईं। "हाय! मेरे पास तो अब एक धोती पहनने तक को न रही!" कहकर प्रियंवदा ने मुँह बिगाड़ दिया। "हैं हैं! बावली रोती क्यों है? एक नहीं तेरे लिये हज़ार कपड़े मौजूद! प्रयाग जी में क्या कपड़ों की कमी है?" ऐसा कहकर जब पंडित जी अपनी पत्नी को आश्वासन दे रहे थे गाड़ी में से निकाल कर ट्रंक सिर पर लादे हुए भागता हुआ वही आदमी आया और ट्रंक धरती पर डाल कर प्रियंवदा के कान में धीरे से कुछ कह कर यह गया! वह गया!! और देखते देखते न मालूम किधर गायब हो गया। तब पंडित जी बोले—

"क्या कह गया!"

"कुछ नहीं नाथ! फिर यहाँ भी आ मरा!"

"नहीं कुछ तो कहा होगा? कहती क्यों नहीं है? क्या कहा?"

"अरे! आपको भी वहम हो गया? अच्छा सुनो! मैं कहती हूँ सुनो!" कह कर प्रियंवदा ने पंडित जी के कान में कुछ कहा और तब वह कहनेवाली जितनी हँसी सुननेवाला उससे चौगुना, पचगुना हँसा। हँसते हँसते दोनों के पेट में

बल पड़ गए। आँखों में आँसू निकल पड़े और दोनों ही के मुँह लाल हो गए। इनके संगी साथी न जान सके कि मामला क्या है ? सब भौचक से रह गए। और दोनों को हँसते देख कर इनके साथ वालों को हँसी का मतलब समझे बिना भी हँसी आ गई। अस्तु और हँस रहे हैं तो हँसने दीजिए। किंतु उस आदमी की ऐसी हरकत देखकर न मालूम क्या क्या बातें याद करके कांतानाथ के तन बदन में आग लग गई। उनकी तिउरियाँ क्रोध के मारे ऊँची चढ़ गईं। गुस्से से उनके होंठ फड़फड़ाने लगे और न मालूम मन ही मन क्या बड़बड़ाते हुए वह कुलियों के माथे सामान लदवा कर सब के साथ टिकट बाबू को टिकट थँभा कर स्टेशन के बाहर आ खड़े हुए।

———:*:———

प्रकरण—१६

प्रयागी पंडे ।

तीर्थराज प्रयाग के स्टेशन से बाहर होते ही कोई पचास चालीस लट्ठधारियों ने इन लोगों को घेर लिया। उनके हाथों में कान के बराबर ऊँची लाठियाँ, बगल में बटुवा, सिर पर सफेद टोपियाँ, शरीर में सफेद कुर्ते और कंधे पर एक एक दुपट्टे के सिवाय यदि और कुछ हो भी तो क्या हो ? ललाट पर श्वेत चंदन के तिलक और उसमें भी विशेष कर मछलियों के से आकार। स्टेशन पर वहाँ के पंडे स्वयं नहीं आते हैं। आते हैं या तो उनके नौकर अथवा वे लोग जिनका पेशा ही यह है कि यजमानों को घेर घार कर गुरुओं के मकानों पर पहुँचा देना। इन लोगों की आखें विजया महारानी ने लाल कर रक्खी हैं। क्योंकि यह ऐसे ही जीवों का सिद्धांत है कि— "भंग कहै सो बावरो और विजया कहै सो कूर, याको नाम कमलापती रहै नैन भरपूर।" इनमें से जिन्हें विजया की लाली कुछ फीकी जँचती है वे गाँजा पीकर लाली जमाते हैं क्योंकि फीकी जो लाली नहीं और वह लाली ही क्या जो ज़रा देर में उड़ जावे।

इस यात्रापार्टी की आज भूख के मारे आँतें बैठी जा रही हैं, प्यास से गला सूखा जा रहा है और इस तरह सब

के सब व्याकुल हैं। एक कदम आगे बढ़ने का जी नहीं चाहता। सबकी इच्छा होती है कि यदि कृपा करके गंगा महारानी यहाँ कहीं पास ही निकल आवें तो स्नान श्राद्धादि से निवृत होकर कुछ पेट की चिंता करें। पंडित, पंडितायिन और छोटे भैया की यदि यह दशा हो तो हो क्योंकि वे ब्राह्मण थे, कट्टर सनातनधर्मी थे, अंगरेजी के अच्छे विद्वान होने पर भी रेल में पानी नहीं पीते थे, स्टेशनों के नलों का पानी उनके काम नहीं आता था, खोमचों की पूरी तरकारी तो क्या वरन विलायती चीनी की मिठाई तक का स्पर्श करने से उन्हें घृणा थी। इन स्टेशनों पर अवश्य ही फल मिलने का अभाव नहीं था परंतु प्रथम तो आज स्नान संध्या का अवसर ही नहीं मिला और इनके बिना इनके लिये जल पान भी हराम फिर आज तीर्थ का उपवास है। भगवती भागीरथी में, त्रिवेणी में स्नान करके, श्राद्ध करने से पहले यदि खा लिया तो यात्रा करके भी झख हीं मारी। ऐसी दशा केवल पंडित जी, उनकी गृहिणी, कांतानाथ और गौड़बोले की ही हो तो खैर। किंतु काछी होने पर भी बूढ़े भगवानदास ने और उसके डर से गोपीवल्लभ तथा उसकी माँ ने मुँह में एक दाना नहीं डाला, एक घूँट पानी नहीं पिया। और जब लोगों ने उनसे आग्रह किया तो उन्होंने कह दिया, साफ साफ कह दिया कि—"हम जाति के शूद्र हैं तो क्या हुआ? क्या भंगी चमारों से छूकर उनका छुआ हुआ खावें पियें?

आदमी का चोला बार बार थोड़े ही मिल सकेगा? क्या एक दिन न खाने में मर जाँयगे और मरेंगे भी तो गंगा महारानी के किनारे?"

इस कारण जब यह पार्टी भूख प्यास से खूब व्याकुल हो रही थी तीर्थ गुरुओं के नौकर और ब्राह्मण होने पर ये इन्हें यमदूत से दिखलाई दिए। ये लोग चाहे इस तरह हज़ार व्याकुल हों तो क्या, ये भूख प्यास से मर ही क्यों न जाँय किंतु पंडों के नौकरों ने जिस काम के लिये घेरा है उसका जवाब पाए बिना वे इन्हें रास्ता देनेवाले थोड़े ही थे? उनमें से किसी ने पूछा—"कहाँ से आए हो?" कोई बोला—"तुम्हारी जात कौन?" "तीसरे ने दूसरे की बात काट कर कहा—"अगर जयपुर रहते हो तो हमारे साथ चलो।" चौथा तीसरे को घुड़क कर पंडित जी का हाथ खैंचते हुए कहने लगा—"आओ आओ हमारे साथ चलो। ये सब साले लुच्चे हैं। यों ही रोज रोज बिचारे यात्रियों को दिक किया करते हैं।" पाँचवा चौथे के हाथ में से पंडित जी का हाथ छुड़ाता हुआ चौथे को एक थप्पड़ मार कर—"तू साला और तेरा बाप साला? साला हमारे जजमानों को लिए जाता है। आओ जी हमारे साथ।" छठे ने कहा—"यह आए पंच। तेरा मुँह जो हमारे जजमान को ले जाय। अभी अघोड़ी बिगाड़ डालूं? जूते मारते मारते चाँद गंजी कर डालूं तो मेरा नाम! जानता है तू मुझे?" पाँचवें ने लाठी उठाकर छठे को आँखे दिखलाते हुए—

"जूते तो जोरू के मारियो। जोरू का गुलाम! खबर भी है घर की? यारों के एक ही लट्ठ से खोपड़ी फूट जायगी। जेलखाने भी चले जाँयगे तो क्या फिक्र है। वह तो हमारी सुसराल है। जैसे तीन बार वैसे चौथी बार भी सही।" इन सब को हटाता हुआ, सब के बीच में पड़कर सातवाँ बोला—"बिचारे यात्री को क्यों दिक करते हो?" तब आठवें ने कहा—"यात्री भी तो गूंगा बहरा है। अगर यह अपना नाम धाम बतला दे तो सब अपना रास्ता लें।" इस पर "हाँ! गूँगा बहरा है! इसके साथी भी उल्लू के पट्ठे हैं। कोई बोलता ही नहीं।" की आवाज आई। किसी ने कांतानाथ को घेरा और किसी ने प्रियंवदा को। किसी ने भगवानदास को और किसी ने बुढ़िया को किंतु सब के सब चुप। इतने ही में पंडित जी की दूर खड़े हुए एक आदमी पर नजर पड़ी और तब ही उन्होंने ललकार कर कहा—"हट जाओ। फौरन अलग हो जाओ। नहीं तो मैं अभी पुलिस को पुकारता हूँ। हमारा पुरोहित वह खड़ा है।" उनके ऐसा कहते ही सब वहाँ से एक एक करके खसक गए। वह बूढ़ा ब्राह्मण इन्हें गाड़ी पर बिठला कर दारागंज ले गया और एक साफ सुथरे मकान में उसने इन्हें डेरा दिया।

इस तरह मकान में पहुँचने से इन्हें विश्राम और सो भी थोड़ा बहुत अवश्य मिला। थोड़ा बहुत इसलिये कि यहाँ जैसे पंडों के नौकरों ने इनको घेरा था वैसे ही पहुँचने पर बगलों में

बहियाँ दबा दबा कर पंडे स्वयं इनके पास आने लगे। स्टेशन पर नौकरों ने यदि सवाल पर सवाल करके कर्कश शब्दों से इन्हें दिक कर डाला तो यहाँ आइए, पधारिए, अन्नदाता आदि के संबोधन के साथ इन लोगों के बाप दादाओं के नाम पूछे जाने लगे, गाँव, ज़िला, राज्य का किसी ने सवाल किया तो कोई जाति पाँति का, कुल का, खानदान का पचड़ा ले बैठा। उस बूढ़े ने इन लोगों से बहुतेरा कहा कि ये हमारे जजमान हैं। हमें ही ये लिवा कर आये हैं और गुरु जी का भगवान स्वर्ग वास करै। गुरुआनी बिचारी विधवा है। उसके मुँह का कौर न छीनो। सात घर में ताला लग गया है। उस अनाथ अबला को मत सताओ। परंतु सब ने उसे फटकार दिया और यहाँ तक कह दिया कि-"उस जाटों के पुरोहित के ब्राह्मण यजमान कहाँ से आए? गढ़ाये भी हैं कभी ब्राह्मण?" किसी ने कहा-"गौड़ गौड़ हमारे!" कोई बोला "गुजराती गुजराती हमारे!" किसी ने काहा—"जयपुर हमारा! और कोई कहने लगा—"जोधपुर हमारा!" इन्होंने कहा—"यों हम किसी की नहीं मानते। यदि कोई भी न मिला तो यही बूढ़ा संतोषी (स्टेशन से साथ आनेवाले को दिखाकर) हमारा पुरोहित। तुम्हारे लफंगे नौकरों से तंग आकर ही हमने इसे पसंद किया था। हाँ! मुफ्तीपुर के पंडित रमानाथ शास्त्री के हस्ताक्षर कोई हमें दिखलादे तो वह हमारा पुरोहित। वही हमारे पूज्यपाद पिता जी थे।"

पंडित जी के मुख से इतने शब्द निकलते ही दो एक को छोड़ कर सब के सब अपनी अपनी बहियाँ लेकर चल दिए। उन दोनों ने अपनी अपनी बहियों में गोता लगा कर नाम निकाले। वहाँ के जाट गूजर मिले। मुफ्तीगाँव के नाम के साथ भगवानदास के बड़े बूढ़े मिले और बहुत तलाश करने पर रामनाथ शास्त्री के हस्ताक्षरों की नकल मिली। नकल से पंडित जी का संतोष न हुआ तब असल मँगाई गई। पंडित जी के पिता ने जिसे अपना पुरोहित माना था उसके तीन भाई और तीनों के सब मिला कर सात बेटे थे। इन तीनों के नाम थे— मसुरिया, इमलिया, और मेंहदिया। तीनों में इमलिया विद्वान् था। उसके कर्मकांड से प्रसन्न होकर ही शास्त्री जी ने लिख दिया था कि—'

"हमने अपने प्राचीन पंडे को मूर्ख पाकर उसे छोड़ दिया। अब भी उसके घर में कोई पंडित पैदा हो तो हमारे बेटे पोते उसे मानें। पांडित्य से प्रसन्न होकर हम इमलियादीन को अपना गुरु मान कर उसके चरण पूजते हैं। हमारी संतान यदि योग्य होगी तो योग्य को ही मानेगी। मूर्खों को मानना अच्छा नहीं।"

अब इन तीनों भाइयों में से कोई नहीं रहा था, बीस वर्षों के बीच में इनके सातों बेटे मर चुके थे। दो तीन लड़के गोद अवश्य लिए गए किंतु वे भी अपनी विधवाओं के छोड़ कर चल बसे थे और जिस घर में पंडित रामनाथ शास्त्री ने बीस वर्ष

पहले छोटे मोटे बाल बच्चे सब मिला कर पचास आदमियों का कुटुंब देखा था उसमें तीन विधवाओं के सिवाय कोई नहीं। इन तीनों ने अपनी वृत्ति चलाने के लिये तीन ही लड़के गोद लिए हैं किंतु तीनों लंठ हैं, तीनों अक्षर शत्रु हैं, तीनों की त्रिकाल संध्या के बदले तीनों बार विजया छानती है। गाँजा चरस, चंडू और कोकेन का तो हिसाब ही क्या? यजमानों के नामों की बहियाँ, उनके हस्ताक्षर बाँटने के लिये इनके आपस में अदालत चलती है। बहियाँ सब अदालत में पेश हैं। मुकद्दमा दिवानी तो है ही किंतु आपस में लाठी चल कर कितनों ही के सिर फूट जाने से फौजदारी भी हो गई है। तीनों में से इस कारण दो हवालात में हैं। एक जना उस लाठीबाजी के दिन यदि यहाँ होता तो अवश्य वह भी हवालात की हवा खाए बिना न रहता क्योंकि वह नामी लड़ाकू है। खैर वही आज पंडित प्रियानाथ के पास बैठा बैठा, बार बार हथेली में तंबाखू लेकर मीसता जाता है और खा खा कर उठने के आलस्य से दीवार को पिचक पिचक रंग कर लाली जमा रहा है।

इस पंडे का नाम था जंगी। बहियाँ असल मौजूद न होने से ज्यों ज्यों अपनी वृत्ति पर स्थिर रखने के लिये जंगी ने नकलें दिखा कर असल फिर दिखला देने का वादा करके पंडित जी का संतोष करना चाहा त्यों ही त्यों उनका वहम बढ़ा। नकल में पिता की आज्ञा पढ़ कर इनका विचार और भी पक्का हुआ, इसलिये इन्होंने बेधड़क होकर स्पष्ट कह दिया कि—

"अपने पिता की आज्ञा को माथे चढ़ाकर आप यदि पंडित न हों तो आप को गुरु मानने में हम वाध्य नहीं हैं। पंडों में से कोई अच्छा विद्वान तलाश करके गुरु उसी को मानेंगे। यदि तुम पढ़े लिखे हो तो तुम्हारे पैर पूजने में हमें कुछ संकोच नहीं। हम माथे के बल तैयार हैं।"

गुरु जी ठहरे निरक्षर भट्टाचार्य। उनके लिये काला अक्षर भैंस बराबर। इस लिये दोनों के परस्पर कहा सुनी हुई, सुर्खा सुर्खी हुई और तकरार भी हुई और अंत में अपनी दाल गलती न देखकर जंगी महाराज रमानाथ शास्त्री को गालियाँ सुनाते वहाँ से चले जाने के लिये भी तैयार हुए किंतु गौड़बोले ने प्रियानाथ जी के कान में उन्हें एक ओर लेजाकर चुपके से कहा कि—

"आप करते क्या अनर्थ हो? प्रथम तो इन तीर्थगुरुओं में कोई पंडित मिलना ही कठिन है और यदि दैव संयोग से मिल भी गया तो इन में लाठी चलकर फौजदारी होगी। आज व्यतीपात का पर्व आपके हाथ न लगेगा और हम लोगों को गवाही देने के लिये खिंचे खिंचे फिरना पड़ेगा सो अलग।"

हाँ बेशक!" कह कर जब इन्होंने कांतानाथ की ओर देखा तो उसने भी यही राय दी और प्रियंवदा ने भी आँख के इशारे से पति को मथुरा की बात याद दिला दी। बस इसलिये इन्होंने जंगी गुरु को हाथ जोड़कर बिठलाते हुए कहा—

"महाराज नाराज न हुजिए। विद्या न पढ़ने से ही, क्षमा कीजिए, आप लोगों के घर बैठे जा रहे हैं। मैंने सुना है कि इन दस बीस वर्षों के बीच में कोई सौ सवा सौ घर नष्ट हो गए। यजमानों से जो पाते हो उसे न तो कभी सुकृत में लगाते हो और न ब्राह्मणों के षट्कर्म अग्निहोत्रादि से कभी प्रायश्चित करते हो, यजमान जिस कार्य के लिये आप लोगों को देता है जब वह काम ही आपके यहाँ नहीं तब ही आप लोगों की दुर्दशा है। मैंने सुना है कि, क्षमा करना, आप लोगों का पैसा कुकर्मों में जाता है।"

"हाँ यजमान सच है।"

"अवश्य सत्य है और हम अपने पिता की आज्ञा से आप को मानने में बाध्य नहीं हैं। परंतु आप का जी दुखाना भी नहीं चाहते। आपका हक़ आपको मिलेगा और कर्मकांड के लिये हम ब्राह्मण साथ ले आए हैं।"

"अच्छी बात है। आपकी मर्जी। नहीं तो ब्राह्मण यहाँ भी अच्छा मिल सकता है। और अब हम लोगों के बालकों को पढ़ाने के लिये पाठशाला भी खुली है। थोड़े दिनों में आपकी यह शिकायत मिट जायगी।"

फिर भी निर्लोभी गौड़बोले ने गुरु जी के बतलाए हुए ब्राह्मण को श्राद्ध कराने का काम देने का आग्रह किया और वे सब वहाँ से नंगे पैरों, गुरु जी के सवारी के लिये आग्रह करने पर भी केवल भक्ति के विचार से पैदल चलकर सिता-

सित संगम पर पहुँच कर कृतार्थ हुए, अपने लोचनों को सुफल करके भगवती त्रिवेणी से प्रार्थना करने लगे।

प्रकरण—२०

प्रयाग-प्रशंसा ।

"अहा ! कैसी अलौकिक छटा है ? वास्तव में इस शोभा ही से प्रयागराज सब तीर्थों का राजा है ! भगवती भागीरथी और महारानी यमुना का संगम अपूर्व दृश्य है। जमीन के पर्दे पर ऐसा दृश्य कहीं नहीं। यह श्यामा और श्वेता का संयोग कैसा अद्भुत है ! नौका में बैठ कर मीलों तक निहारते चले जाइए। दोनों के जल लहरों से, प्रवाह से एक हो जाने पर भी पृथक पृथक ! मानों दोनों की होड़ा होड़ी है। विष्णुप्रिया और शंकरप्रिया का मिलन है, आलिंगन है। दोनों का स्वच्छ, निर्मल जल—एक का श्याम और एक का गौर, आपस में मिल मिल कर, टकरा टकरा कर एक दूसरे को अपने में मिला लेने का प्रयत्न कर रहा है। भगवती भागीरथी विष्णुपादोद्की है। जब उसका प्रादुर्भाव भगवान के चरण कमलों से हुआ है, तब उसे भगवान भूतभावन की भार्या होने पर भी सब से अधिक बल भगवान् विष्णु के पदपद्मों का है। स्त्रियों का यह स्वभाव ही होता है कि वे पीहर की ओर विशेष अनुराग रखती है किंतु भगवती यमुना को बल है कृष्ण भगवान की अर्द्धांगिनी होने का। इन दोनों की होड़ा होड़ी में उसी कृष्ण महाराज ने जिताया गंगा को क्यों ?

इस लिये कि वह अपने चरणों से उत्पन्न हुई है, चरणों में भक्तों का निवास और भक्तों से भगवान जब स्वयं हार चुके हैं, भक्तों से हार खाने में जब वह अपनी शोभा समझते हैं तब उसे जिताना ही चाहिए, फिर वह अपने इष्टदेव अपने प्यारे शंकर की प्यारी है। इसलिये भगवान ने शंकरप्रिया को विजय की बाजी दिलाने के लिये अपनी प्यारी को समझा दिया और समझा बुझा कर यहाँ तक राजी कर दिया कि जो भगवान भुवनभास्कर की दुहिता, धर्मराज की भगिनी और वासुदेव की अर्द्धांगिनी थी वह अपना रूप, अपना गुण और अपना प्रभाव भगवती भागीरथी को प्रदान करके महारानी गंगा में मिल गई और दूध बुरे की तरह मिल गई, यहाँ तक मिल गई कि अपना नाम तक न रक्खा। हज़ार प्रेम होने पर भी दो सखियों का आलिंगन घंटे दो घंटे से अधिक नहीं रह सकता है। जो मिला है उसका बिछुड़ना अवश्यंभावी है परंतु हिंदू जो पुनर्जन्म मानते हैं उनका मिलन और बिछुड़न अनेक जन्मों तक बार बार होता है। और यह सम्मेलन इसी लिये अलौकिक है कि इसमें मिलन के अनंतर बिछुड़न नहीं। गंगा यमुना के अलौकिक प्रेम का यही नमूना है। मन में ऐसा ही भाव उत्पन्न होता है? क्यों भैया होता है ना?"

"हाँ भाई साहब होता है! वास्तव में अलौकिक छटा है। मेरे हृदय में जो आनंद हुआ है वह गूँगे का गुड़ है। गूंगा

गुड़ खाकर जैसे उसका स्वाद बताने में असमर्थ है मैं भी वैसा ही अवाक् हूँ। परंतु क्यों भाई सरस्वती कहाँ है। वह गुप्त क्यों है ?"

"वह गुप्त यों है कि वह भारतवासियों की मूर्खता से रूठ गई है। इधर ब्राह्मणों ने उसका पढ़ना छोड़ा और उधर उसने उनका त्याग किया! भारत की लक्ष्मी और सरस्वती का बैर है। विद्वान् से लक्ष्मी नाराज रहती है। एक बार उसने कह भी दिया था कि महर्षि अगस्त्य जी ब्राह्मण थे जो मेरे पिता समुद्र को तीन चुल्लू कर गए। मेरे पति परमेश्वर के लात मारने वाले भृगु जी भी ब्राह्मण थे, बालकपन से ही ब्राह्मण मेरी वैरिणी सरस्वती को धारण करते हैं और नित्य प्रति उमाकांत का पूजन करने के लिये ब्राह्मण मेरे गृह (कमल) को तोड़ते हैं, इस लिये मैंने खिन्न होकर ब्राह्मणों के गृह को सदा के लिये छोड़ दिया है। इस तरह लक्ष्मी के कोप से जब तक ब्राह्मण डरे नहीं तब तक सरस्वती उन पर प्रसन्न रही और वे ब्राह्मण भी बने रहे किंतु जब उसने कोप करके ब्राह्मणों को छोड़ा तब लक्ष्मी ने भी उन्हें ग्रहण न किया। बस ऐसे ही सरस्वती का लोप हो गया।"

"हाँ यह ठीक परंतु त्रिवेणी की एक वेणी किधर चली गई ?"

"भैया, यहाँ तीन वेणियाँ थीं! एक गंगा और दूसरी यमुना प्रगट होकर बहती हैं। उनका प्रवाह हम संसारियों

का निस्तार करने के लिये हमारे नेत्रों के सामने है और तीसरी वेणी सरस्वती का प्राचीन काल में ऋषि महर्षियों, ब्राह्मण महात्माओं के मुख कमल से उपदेशामृत रूप में धाराप्रवाह होता था। भगवती सरस्वती उस समय वाणीरूपिणी होकर बहती और श्रोता गण के हृदय कमल को विमल करके शरीर मल को धोनेवाली नदी द्वय में मिल जाती थी। हिंदुओं के दुर्भाग्य से उस तीसरी धारा को लोप हो गया। स्थान वही है तीर्थ वही है और सात सात चौदह पीढ़ियों का उद्धार करने की शक्ति वही है परंतु उसे प्राप्त कर अलौकिक सुख का अनुभव करने के अधिकारी नहीं हैं।"

"आपका कथन यथार्थ है। अक्षर अक्षर से अमृत का संचार होता है। शब्द शब्द से मेरा मलिन मन पवित्र होता है किंतु इतना और बतला दीजिए कि सरस्वती नदी कहाँ है? दो धाराओं का दर्शन होता है किंतु तीसरी धारा?"

"तीसरा धारा का पता किले के पास दिया जाता है। जिनके अंतः करण सच्छास्त्रों के सुसंस्कार से, महात्माओं के सदुपदेश से दृढ़ हो गए हैं और जिन की बुद्धि में इस कारण कुशाग्रता है और ऐसी ही बातों से जिन की दिव्य दृष्टि कही जाती है उन्हें अंतःकरण के लोचनों से अब भी तीसरी धारा के दर्शन होते हैं। केवल अधिकारी चाहिए।"

"बेशक! तब जो सरसती पंजाब में है, जो गुजरात में है–वह और यह एक ही है अथवा जुदी जुदी?"

"एक ही ! निस्संदेह एक ही । यही ईश्वरीय माया है। प्रकृति देवी ने परम पिता परमेश्वर की वशवर्तिनी होकर जो पुराने नाले थे उन्हें नदियाँ बना दिया और जहाँ नदियाँ थीं वहाँ नाले तक न रहे। इस परिवर्तनशील संसार में छोटे को बड़ा और बड़े को छोटा कर देना उस विचित्र खिलाड़ी का एक अद्भुत खिलवाड़ है। अनेक युगों पूर्व, अनेक चौकड़ियों पूर्व सरस्वती भी भारतवर्ष की बड़ी नदियों में थी। वह न मालूम कहाँ से निकल कर कहाँ कहाँ बहती हुई यहाँ आकर द्विवेणी से त्रिवेणी हो गई थी, अब कहीं कहीं छोड़ कर कहीं उसका पता तक नहीं है। संसार को कुछ का कुछ कर डालनेवाले अवतारों तक का जब पुराणों की गाथाओं के सिवाय, इने गिने तीर्थों के सिवाय पता नहीं है तब यदि सरस्वती नामशेष रह गई तो आश्चर्य क्या ? और जो भगवान के भक्त हैं, अधिकारी हैं उनके हृदयमंदिर में वह अब भी विराजमान् है। तुलसीकृत रामायण में महर्षि वाल्मीकि जी ने जो स्थान मर्यादा पुरुषोत्तम रामचंद्र जी को निवास के लिये बतलाए थे उनमें जहाँ दशरथनंदन के दर्शन होते हैं वहाँ अब भी सरस्वती विद्यमान है।"

"हाँ ! कहिए तो कौन कौन स्थान हैं ? जरा उन्हें ताजा कर दीजिए।"

"अच्छा सुनो भगवान रामचंद्रजी के प्रश्न के उत्तर में

वाल्मीकिजी ने जो कुछ कहा वह प्रत्येक मनुष्य के हृदयपटल पर लिखने योग्य है। उन्होंने कहा—

दोहा। पूछेहु मोहि कि रहौं कहँ, मैं पूछत सकुचाउँ।
जहँ न होहुँ तहँ देहु कहि, तुम्हहिं देखावहुँ ठाउँ।

चौपाई। सुनि मुनि बचन प्रेम रससाने।
सकुचि राम मन महँ मुसकाने॥
बालमीकि हँसि कहहिं बहोरी।
बानी मधुर अमिय रस बोरी॥
सुनहुँ राम अब कहहुँ निकेता।
जहाँ बसहु सिय लखन समेता॥
जिनके श्रवण समुद्र समाना।
कथा तुम्हारि सुभग सरि नाना॥
भरहिं निरंतर होहिं न पूरे।
तिनके हिय तुम कहँ गृह रूरे॥
लोचन चातक जिन करि राखे।
रहहिं दरस जलधर अभिलाषे॥
निदरहिं सरित सिंधु सर भारी।
रूप बिंदु जल होहिं सुखारी॥
तिनके हृदय सदन सुखदायक।
बसहु बंधु सिय सह रघुनायक॥

दोहा। जस तुम्हार मानस विमल, हंसिनि जीहा जासु।
मुकताहल गुण गण चुनहि राम बसहु हिय तासु॥

चौपाई। प्रभु प्रसाद सुचि सुभग सुबासा।
सादर जासु लहहिं नित नासा॥
तुम्हहिं निवेदित भोजन करहीं।
प्रभु प्रसाद पट भूषण धरहीं॥
सीस नवहिं सुर गुरु द्विज देखी।
प्रीति सहित करि बिनय बिसेषी॥
कर नित करहिं राम पद पूजा।
राम भरोस हृदय नहिं दूजा॥
चरन राम तीरथ चलि जाहीं।
राम बसहु तिनके मन माहीं॥
मंत्रराज नित जपहिं तुम्हारा।
पूजहि तुम्हहिं सहित परिवारा॥
तर्पण होम करहिं विधि नाना।
विप्र जिवाहि देहिं बहु दाना॥
तुमसे अधिक गुरुहिं जिय जानी।
सकल भाय सेवहिं सनमानी॥

दोहा। सब कर माँगहिं एक फल, राम चरन रति होउ।
तिनके मन मंदिर बसहु, सिय रघुनंदन दोउ॥

चौपाई। काम, क्रोध, मद, मान, न मोहा।
लोभ, न छोभ, न राग, न द्रोहा॥
जिनके कपट, दंभ, नहिं माया।
तिनके हृदय बसहु रघुराया॥

सबके प्रिय सबके हितकारी।
दुख सुख सरिस प्रशंसा गारी॥
कहहिं सत्य प्रिय बचन बिचारी।
जागत सोवत सरन तुम्हारी॥
तुमहि छाड़ि गति दूसर नाहीं।
राम बसहु तिनके मन माँहीं॥
जननी सम जानहिं पर नारी।
धन पराय विष तें विष भारी॥
जे हरषहिं पर संपति देखी।
दुखित होहिं पर बपति विशेषी॥
जिनहिं राम तुम प्रान पियारे।
जिनके मन सुभ सदन तुम्हारे॥

दोहा। स्वामि सखा पितु मातु गुरु, जिनके सब तुम तात।
मन मंदिर तिनके बसहु, सीय सहित दोउ भ्रात॥

चौपाई। अवगुन तजि सबके गुन गहहीं।
बिप्र धेनु हित संकट सहहीं॥
नीति निपुन जिन कर जग लीका।
घर तुम्हार तिनकर मन नीका॥
गुन तुम्हार समुझहिं मन दोषा।
जेहि सब भाँति तुम्हार भरोसा॥
राम भक्त प्रिय लागहिं जेही।
तेहि उर बसहु सहित बैदेही॥

जाति पाँति धन धर्म बड़ाई।
प्रिय परिवार सदन सुखदाई॥
सब तजि तुमहिं रहइ लय लाई।
तेहि के हृदय बसहु रघुराई॥
स्वर्ग नरक अपवर्ग समाना।
जहँ तहँ देख धरे धनु बाना॥
कर्म बचन मन राउर चेरा।
राम करहु तिहिक उर डेरा॥

दो०—जाहि न चाहि कबहुँ कछु, तुम सन सहज सनेह।
बसहु निरंतर तासु मन, सो राउर निज गेह॥"

"यथार्थ है! सत्य है? सब शास्त्रों का निचोड़ है। वास्तव में ऐसे ही महात्माओं का हृदय भगवान के निवास करने के योग्य है। और ऐसे महात्माओं के निरंतर निवास से पर्वों, महापर्वणियों पर इकट्ठे होने से प्रयाग तीर्थराज कहलाया है। गोस्वामी तुलसीदास जी का जन्म हुए अभी तीन सौ वर्ष हुए हैं। उनके जमाने तक प्रयागराज में ऐसे महात्मा निवास करते होंगे। उस समय तक इस स्थान का वही पुराणप्रसिद्ध प्रभाव, परम बंदनीय शोभा होगी। यदि उस समय आज कल का सा प्रयाग होता तो शायद उन्हें कुछ संकोच होता!"

"नहीं अब भी वही प्रयाग है और कल्पांत तक वैसा ही रहेगा। जहाँ तक सितासित संगम विद्यमान है वहाँ तक

वही स्थान और वही आशा! कुछ वर्षों पूर्व यहाँ की धर्म सभा ने, यहाँ के सनातनधर्मावलंबी सज्जनों ने वैसी ही झलक दिखाने का उद्योग किया था। आज कल फिर वे कुंभकर्णी निद्रा में हैं। जब जागेंगे तब फिर वही झलक दिखाई देने की आशा है।"

"आशा रखना अच्छा है। आशा ही पर संसार जीवित है परंतु अब बहुत विलंब हुआ जाता है। श्राद्ध की सब सामग्री तैयार है। पहले जिस कार्य को आए हो उसका निर्वाह कर लो फिर इसका विचार करेंगे।" ऐसा कह कर गौड़बोले ने दोनों भाइयों को चिताया। "ओ हो! बड़ी देरी हो गई! बातों ही बातों में एक घंटा खर्च हो गया।" कह कर पंडित जी ने जब अपनी धर्मपत्नी की ओर देखा तब उसने नेत्रों के संकेत से समझा दिया कि "कुछ चिंता नहीं, इस धर्मचर्चा में बड़ा आनंद आया। यही भगवती के दर्शनों का फल है। यदि ऐसे ऐसे कामों में मनुष्य का सदा चित लगा रहे तो फिर विपत्ति का वास्ता ही क्या?" "हाँ सत्य है।" कहकर पंडित जी कार्य में प्रवृत्त हुए।

प्रकरण—२१

त्रिवेणी संगम ।

त्रिवेणी संगम पर आकर सुस्ता लेने के बाद इस यात्रा पार्टी के लिये सब से पहला काम मुंडन करवाने का था। जंगी महाराज की आज्ञा होते ही पंडित जी के साथ सब लोग नाइयों के अड्डे पर जाने के लिये खड़े हुए। अड्डा नहीं— खाली बातों की खेती थी। गंगाजी की रेणुका में जब मुरई खीरे, ककड़ी, खरबूजे, तरबूज, बोते हैं—उनके इस काम से जैसे वहाँ की भूमि हरी भरी हो जाया करती है वैसे ही इस जगह की धरती ने काली माटी ओढ़ कर अपना गोरा गोरा मुँह इस लिये छिपा लिया कि जिससे किसी की नजर न लग जाय। वहाँ की अलौकिक शोभा सुंदरी के लिये यह काजल की रेखा थी अथवा प्रयाग बालक के लिये दिठौना था। कोई सौ डेढ़ सौ नाई वहाँ बैठे बैठे अपने अपने उस्तरे पैनाते जाते थे और "यहाँ आओ सरकार! इधर!" की चिल्लाहट से कानों की चैलियाँ उड़ाए जाते थे। कोई किसी यात्री से अच्छी रकम पाने की आशा में उसके बाल अच्छी तरह भिगोता था तो कोई कुछ भीगे और कुछ न भीगे यों ही अपना भोंथरा उस्तरा फेर कर उसे अलग करता था। कोई एक को अधमुड़ा छोड़ कर दूसरे को जा चिपटता था

तो सब ही आधे बाल मुंड़ लेने के बाद यात्री से पैसों के लिये झगड़ रहे थे। यदि किसी ने इस गड़बड़ से बचने के लिये पहले ठहरा लेने का सवाल करने की चतुरता दिखाई तो उसके चेहरे की ओर देख देख कर नाऊ ठाकुर हँसते गुर्राते और मुँह मोड़ लेते थे। यदि किसी ने आने दो आने दिखाए तो गालियाँ देते और इस तरह जब तक चार आने, छः आने और रुपया धेली नहीं पा लेते यात्री का पिंड नहीं छोड़ते थे। कभी सरकार, अन्नदाता और महाराज की पदवी देकर उसकी खुशामद करते, खुशामद ही खुशामद में उसे चौथे आसमान पर पहुँचा देते और कभी नाराज़ होकर उसे, उसके पुरखाओं को गालियों के प्रसाद से नरक में जा ढकेलते थे। बस इस तरह गाँठ का पैसा गँवा कर प्रयागी नाइयों से अपने सिर पर हाथ फिराने बाद, भोंथे उस्तरे से मुंडवा कर सिर पर, दाढ़ी पर, मोछ पर चोट खाते, लहू पोंछते, गालियाँ खाते और बिलखते बिलखते यात्री वापिस आते थे। भोला की ऐसी ही दुर्दशा देख कर पंडित जी घबड़ा उठे।

पंडितजी का और इनके साथ में इनके साथियों का अवश्य ही सौभाग्य समझो। सौभाग्य इस लिये कि इनकी सूखी सूखी बातें सुन कर जंगी महाराज कुछ कुछ डर गए थे। बस इस लिये उन्होंने कृपा कर इन लोगों को नाइयों के फंदे से बचा दिया। उनकी आज्ञा से तट के तख्तों पर बैठ

कर ही इन्होंने सिर मुँड़ाया। दाढ़ी मुड़वाई और मोछें मुड़वा कर बस नख और कांख छोड़कर बिलकुल सफाचट्ट हो गए। पति और देवर का औरतों का सा सफाचट मुँह देख कर प्रियंवदा मुसकराई, और रोकते रोकते अपने प्राणनाथ की ओर एक कटाक्ष डालते हुए बस "काजल और टिकुली की कसर है" कहे बिना उससे न रहा गया। मा बाप मौजूद बतला कर गोपी वल्लभ ने भी अपनी बांकड़ी मोछें और "मान मनोहर" दाढ़ी मुँड़वाने में बहुत ही आना काना की, किंतु बूढ़े की एक ही घुड़की ने उसे सीधा कर दिया। भगवानदास का पोपला मुँह अब तक उसकी लंबी और भारी दाढ़ी के घूंघट में छिपा हुआ था। आज दाढ़ी और मोछें उतरते ही पोपलेपन की पोल निकल गई। औरों को मुँड़वाते देख कर बुढ़िया चमेली का भी शौक चर्राया। नाई ने लेख बतला कर उसे केवल पैसे के लोभ से राजी कर लिया और इसलिये बूढ़े बुढ़िया की एक सी सूरत देखते ही सब के सब खिलखिला उठे। नाई राम ने तो प्रियंवदा को भी फुसलाने में कसर नहीं की थी किंतु "चल निगोड़े, कहीं सुहागिन लुगाइयां भी ऐसा करती होंगी!" कह कर उसने उसे टरका दिया। जब प्रयागी नाइयों की हुज्जत करने की आदत ही ठहरी फिर इनसे झगड़ने में वे क्यों चूकने लगे परंतु सब की मुँड़ाई के दो रुपए दिलाकर झंगी महाराज ने फैसला कर दिया।

अब पंडित, पंडितायिन, गौड़बोले, भगवानदास, चमेली और गोपीवल्लभ सबही इकट्ठे होकर स्नान करने के लिये भगवती में घुसे। घुसने से पहले इन सबने माता का जल लेकर माथे पर चढ़ाया और तब इस तरह उसकी स्तुति करने लगे—

पंडित जी बोले—

"हरि पद कमल को मकरंद,
मलिन मति मन मधुर परिहरि विषय नीरस फंद,
परम शीतल जानि शंकर सिर धरयो तजि चंद,
नाक सर बस लेन चाह्यो सुरसरी को विंद,
अमृत हू ते अमल अति गुण स्रवति निधि आनंद,
सूर तीनों लोक परस्यो सुर असुर जस छंद,
"वैद्य की औषध खाऊँ कछु न करूँ व्रत संयम री सुन मो से।
तेरो ही पान पिए रसखान सजीवन लाभ लहै सुख तो से॥
एरी सुधामय भागीरथी सब पथ्य कुपथ्य करे तव पोसे।
आक धतूरो चबात फिरै विष खात फिरे शिव तोरे भरोसे॥"

प्रियंवदा ने गाया—

"जयति जय सुरसरी, जगदखिल पावनी।
विष्णु पद कँज मकरँद इव अँबु बर बहसि दुख दहसि,
अघवृंद विद्रावनी।
मिलत जल पात्र अज युक्त हरि चरण रज विरज वर वारि
त्रिपुरारि सिर धामिनी।

अम्बुकन्या धन्य पुण्यकृत सगर सुत भूधर द्रोणी
विद्दरणि बहु नामिनी ।
यक्ष गंधर्व मुनि किन्नरोरग दनुज मनुज मज्जहि सुकृत
पुंजयुत कामिनी ।
स्वर्ग सोपान विज्ञान ज्ञान प्रदे मोह मद मदन
पाथोज हिम यामिनी ।
हरित गंभीर वानीर दुहुँ तीर वर मध्य धारा
विशद विश्वं अभिरामिनी ।
नील पर्यंक कृत शयन सर्पेश जनु सहसशीशावली
स्रोत सुर स्वामिनी ।
अमित महिमा अमित रूप भूपावली मुकुटमणि वंद्य
त्रैलोक्य पथगामिनी ।
देहु रघुबीर पद प्रीति निर्भर मातु तुलसीदास त्रास
हरणि भव भामिनी ।"

कांतानाथ ने ललकारा—

"हौं तो पंचभूत तजिबे को तक्यो तोहि पर तैंतो करयो मोहि
भलो भूतन को पति है ।
कहे पद्माकर सुएक तन तारिबे मैं कीन्हें तन ग्यारह
कहो सो कौन गति है ॥
मेरे भाग।गंग यही लिखी भागीरथी कहिये कछुक तो
कितेक मेरी मति है ।

एक भव शूल आयो मेटिबे को तेरे कूल तोहि तौ
त्रिशूल देत बारि ना लगत है ॥"

गौड़बोले बोले—

"जब से जन्म भयो पृथ्वी पर कभी न हरि को नाम लियो।
सेवा की नहिं मात पिता की साधुन को नहिं काम कियो।
हरो बहुत धन ठग ठग के नहीं हाथ से एकहु दाम दियो।
कियो बहुत विष पान अमृत को एकहु बेर न जाम पियो।
कैसे बचिहौं काल से मैं अब कौन छुटहिहै मोहि यम से।
मैं पापी तुम तारन वारी बनिगे पाप बहुत हम से।
वेद पुराण बखानत निशि दिन अधम पापियों को तारा।
किया बहुत संग्राम काल से और यमदूतों को मारा।
सुनी बात यह श्रवण में मैंने किये पाप अपरंपारा।
बनिहैं और बहुत से अघ देखौं कैसे हो निस्तारा।
अब तो यही लड़ाई ठानी गंगा जी मैं तुम से।
मैं पापी तुम तारनवारी बनिगे पाप बहुत हम से।"

इस तरह जिस समय ये चारों गंगा जी की स्तुति कर रहे थे, गंगास्तवन गा गा कर प्रसन्न होते जाते थे बूढ़े भगवानदास और उसकी गृहिणी चौधार आँसू रो रहे थे। इनकी प्रेमविह्वलता देख कर ये चारों भक्ति में, प्रेम में मग्न हो गए। इनकी आँखों में से आँसू बहने लगे और जब तक तख्ते पर बैठे हुए जंगी महाराज ने एक ललकार मार कर न चिताया ये अपना आपा भूल गए। उसके मुख से

'हाँ महाराज संकल्प' सुन कर इन लोगों की आँखें खुलीं और तब गौड़बोले ने शास्त्रविधि से इनको स्नान करा, संकल्प कराया और इतने ही में फूलों की डालियाँ लिए हुए माली, दूध का बरतन लिए अहीर और भिखारियों ने आ आ कर भगवती में भीगे वस्त्रों से, खड़े खड़े ही इनको चारों ओर से घेर लिया। शरीर में राख रमाए, नौकाओं में भगवान् की मूर्तियों को चढ़ाए, भगवान् के नाम पर पुजापा माँगनेवाले दुनिया छोड़ने पर भी लोभ न छोड़ने वाले तीन चार साधु अपनी अपनी नावें लिए इनके चारों ओर आगए, और उनको ठहरा कर झालर घंटे और शंख घड़ियाल बजाने और चिल्ला चिल्ला कर माँगने लगे। "यहाँ की सब जाति मँगती! देश का दुर्भाग्य! हट्टे कट्टों को भी भीख माँगते हुए लज्जा नहीं आती!" कहते हुए ज्यों ही पंडितजी को मथुरा के विश्रांत घाट का अनुभव स्मरण हो आया उन्होंने तुरंत ही ललकार कर अपने साथवालों से कहा—"खबरदार! एक पाई भी किसी को दी तो अभी ये लोग हम सब को यहीं डुबो कर मार डालेंगे।" यह सुनते ही इनके हाथ का हाथ में और टेंट का टेंट में रह गया। इस प्रकार की आवाज सुन कर पंडितजी के साथी देने से अवश्य रुक गए किंतु ऐसी बँदरघुड़की में आकर लेनदार यदि रुक जायँ तो कल ही उनके चूल्हे में पानी पड़ जाय। जो इन लोगों के पास खड़े थे वे और भी पास आ गए और

दूरवालों ने उन पासवालों की जगह ले ली। जल में अधिक देरी तक खड़े रहने से जब प्रियंवदा का गोरा रंग और भी सफेद पड़ गया तब पंडितजी के होठ थरथराने और कांतानाथ के दाँत बजने लगे हैं। बूढ़ा भगवानदास अवश्य ही अब तब कड़ा बनकर पत्थर की मूर्ति की तरह खड़ा हुआ था किंतु एकाएक उसका हाथ कमर पर पड़ा। पड़ते ही रुपयों की बसनी के बदले उसके हाथ में डोरी आई। डोरी आते ही वह एक दम चीख मार कर पानी में गिर पड़ा और बेहोश होकर जब डुबकियाँ लेने लगा तब किसी ने समझा घड़ियाल खैंच रहा है और कोई बोला मिरगी आ गई! किंतु उसकी चीख का असली भेद तब तक किसी ने न जाना जब तक उसने ही सचेत होकर अपनी जबान से न कहा कि—

"मेरी कमर से डेढ़ सौ रुपए की दस गिन्नियाँ कोई काट ले गया। हे भगवान अब मैं यात्रा कहाँ से करूँगा।"

उसे होश भी कोई दो चार मिनट में आया हो सो नहीं। तख्ते पर डाल कर खासे आधे घंटे तक कंबल उढ़ाए रखने के बाद। इतने अर्से में ले जानेवाला न मालूम कितनी दूर पहुँच गया होगा। खैर पंडित जी जब खर्च देने का वादा करके उसको ढाढ़स बँधा चुके तब विजया देवी की निद्रा में से जाग्रत कर जंगी महाराज ने कहा—

"हाँ जजमान ! मैं कहने ही को था। यहाँ चोर उचक्कों से खबरदार रहना !"

इस तरह बूढ़े के डेढ़ सौ रुपए गए और उस समय उन भिखारियों को एक पाई तक देने से रोक कर इन लोगों ने बदले में कम से कम डेढ़ सौ ही गालियाँ खाईं। त्रिवेणी के पूजन के लिये पुष्प दूध और फलादि का प्रबंध पहले ही से जंगी महाराज ने कर रक्खा था। उन्हीं से इन लोगों ने पूजन किया और कराया गौंड़बोले ने। अब सूखे वस्त्र पहन कर श्राद्ध करने की पारी आई। पंडितजी ब्राह्मण और भगवानदास तथा भोला शूद्र। पंडितजी को श्राद्ध कराना वेद मंत्रों से और औरों को "शूद्र कमलाकर" से। दोनों काम एक साथ हो भी नहीं सकते और गौड़बोले था दाक्षिणात्य। उसने शूद्रों को कर्म कराना स्वीकार भी नहीं किया। बस इस लिये दोनों भाइयों को श्राद्ध कराने का काम गौड़बोले ने लिया और भगवानदास आदि को कराया जंगी महाराज के बतलाए हुए घुरहू पंडित ने।

घुरहू पंडित विद्यावारिधि था अथवा निरक्षर भट्टाचार्य सो कहने का कुछ कुछ प्रयोजन नहीं किंतु पंडितजी के साथ होने से पूर्व गौड़बोले को जब दिन भर की हाय हाय से चार चौक सोलह पैसे भी नसीब नहीं होते थे तब घुरहु पंडित नित्य ही सायंकाल को पूरी मिठाई खा कर पेट पर हाथ फेरता हुआ, दुपट्टे में दो तीन और कभी कभी अधिक भी

सीधे द्वाय और टेंट में तीन चार रुपए खोसे घर पहुँचता था। इस पर पाठकों को अधिकार है कि वे दोनों में से किसी को पंडित समझ लें किंतु लोगों का खयाल यही था कि जिस से टका ही न कमाया जाय वह विद्या क्या और इसलिये समस्त प्रयागवासी नहीं तो भी दारागंज में तो घुरहू अवश्य विद्या-वारिधि समझा जाता था और अपने पति की ऐसी प्रशंसा सुन सुन कर उसकी पंडितायिन नित्य उठकर बलैयाँ लिया करती थी, नजर लग जाने के डर से कभी तिनके तोड़ा करती और कभी उन पर लाल मिरचैं सात बार वार कर चूल्हे में जला दिया करती थी।

श्राद्ध की सामग्री पहले ही से जुदी जुदी मँगवाई गई थी। ब्राह्मणों के लिये खोवे के पिंड और शूद्रों के लिये जौ के आटे के। गोड़बोले महाशय ने शास्त्रविधि से दोनों भाइयों को एकतंत्र से पार्वण श्राद्ध करवाया। पंडित और पंडितायिन जिस समय इस कार्य में लगे तब प्रियंवदा ने आँखों में पानी लाकर देवर से कहा कि अभी देवरानी भी साथ होती तो पूरा आनंद आता और देवर जी ने "ऊँ! होगा" कहकर यों ही इस बात को टाल दिया। श्राद्ध करते समय पिंडों का पूजन करने के अनंतर जब मध्यपिंड को सूँघने का समय आया तब पंडित जी ने उसे नाक से लगाकर आँखें बंद करलीं। कोई पाँच मिनट तक निश्चेष्ट होकर यों ही वे बैठे रहे। फिर उन्होंने गंगाजी की ओर आँख भर कर देखा। उनके मुख के भाव से

ऐसा मालूम हुआ मानो वे किसी मूर्तिमती को निहार रहे हैं, थोड़ देर तक उन्होंने पलकें न डालीं और तब फिर आँखें बंद करके वे आँसू बहाने लगे। इसका मतलब न तो प्रियंवदा ही ने समझा और न कांतानाथ के कुछ ध्यान में आया। हाँ अंत में पंडित जी के "हे माता।" कहकर हाथ जोड़ने और गौड़बोले के—"आपका काम सिद्ध समझो।" कहने का मतलब प्रियंवदा ने तो यह लगाया कि "गंगा माता पुत्र प्रदान करेंगी" और कांतानाथ समझा कि "माता की प्रेत योनि छूट जायगी।" किंतु बहुत खोद खोद कर पूछने पर भी दोनों ने दोनों को नहीं बतलाया कि इस बात का असल मतलब क्या था।

दरिद्री गौड़बोले के लिये केवल एक ही यजमान था इसलिये इस तरह लंबा चौड़ा श्राद्ध कराकर यह तीन घंटे लगादे तो लगा सकता है किंतु घुरहू पंडित यदि एक यजमान को एक ही श्राद्ध कराने में तीन का आधा डेढ़ घंटा भी लगावे तो न तो उसे कल से जंगी महाराज ही घाट पर बैठने दे और न आज से जोरू ही घर में घुसने दे। खाने के लिये मुट्ठी भर चने देना तो कहाँ? यदि घर से जूते मार कर न निकाल दे तो उसकी कृपा समझो। खैर! जंगी गुरु के कम से कम तीस चालीस यजमान इकट्ठे हुए। कोई कहीं का ब्राह्मण और कोई कहीं का भाट। जाट गूजर, काछी, कुरमी, नाई, तेली "सब धान बाइस पसेरी। "कहीं की ईंट

और कहीं का रोड़ा और भानमती ने कुनबा जोड़ा।" बस सब को एक तंत्र से श्राद्ध कराया गया। इसमें बूढ़ा बुढ़िया भी शामिल किए गए। हमारे पाठक महाशय जो बंदर चौबे का संकल्प सुन चुके हैं उनके सामने घुरहू पंडित का संकल्प कहना केवल दुहराना है क्योंकि दोनों एक ही गुरु के चेले और एक ही शास्त्र के ज्ञाता थे। अस्तु घुरहु पंडित ने अपने इर्द गिर्द सब लोगों को वर्तुलाकार बिठला कर कभी अमरकोश के टूटे फूटे श्लोकों से धरती पर कुश डलवाए और कभी कहीं का श्लोक याद न आया तो यों ही झूठ मूठ गुनगुना कर उन पर पानी डलवाया और जब पिंडों का नंबर आया तो "अपने बाप को, उसके बाप को, दादा को, परदादा को, लकड़ दादा को, उसके बाप को उसके बाप को कह कह कर प्रत्येक पिंड के साथ एक एक ताली पीट कर बात की बात में एक एक डेढ़ डेढ़ सौ पिंडों का ढेर लगवा दिया, और प्रत्येक पिंड के साथ एक पैसा भेंट, एक रुपया आचार्य दक्षिणा, चार चार पैसे के दस दस गोदान और ऐसे ही अटरम सटरम पैसे इकट्ठे करने के बाद हाथों में फूलों की माला डाल कर सुफल बुलाने के लिये गुरु जी के पास भेज दिया। गुरु जी वास्तव में पूरे गुरु थे। गुरुआई के हथकंडे अच्छे जानते थे। उन्होंने कभी नर्मी और कभी गर्मी, कभी खुशामद और कभी रुखाई, कभी यजमानों के पुरखाओं की प्रशंसा और कभी ताना

देकर जहाँ तक बन सका उन लोगों से जोत जुताकर उनकी पीठ ठोंकते हुए सुफल बोल दी। बस इसके बाद भिखारियों ने इनकी क्या दशा की सो कहने की आवश्यकता नहीं। हाँ! पंडित जी की सिफारिश से भगवानदास और भोला का जल्दी छुटकारा हो गया और गुरु जी ने उनको बहुत तंग भी न किया।

इस जगह एक घटना अवश्य हो गई। घटना यह कि इन यात्रियों में से एक शौकीन ने मस्तक पर लगाने के लिये चंदन माँगा। यद्यपि चंदन वहाँ मौजूद था परंतु घिसने के परिश्रम से बचने के लिये गुरुजी ने उसे थोड़ी सी गंगा की माटी दे दी। यात्री इधर उधर से उसे देख कर बोला—"अरे महाराज! यह तो मृत्तिका है। चंदन देओ।" गुरुजी झट बोल उठे—"गंगाजी की मृत्तिका चंदन करके मान!" उसने "ठीक" कह कर उसी से तिलक लगा लिया। थोड़ी देर में जब गोदान के संकल्प का अवसर आया और गुरुजी ने प्रत्यक्ष गाय दिखा कर प्रत्यक्ष गोदान का आग्रह किया तब झटपट वह अपनी जगह से उठ कर एक मेंढक पकड़ लाया। लाकर वह उसे गुरुजी को थँभाते हुए बोला "लीजिए प्रत्यक्ष गोदान।" देखते ही गुरुजी झल्लाए। वह आँख दिखा कर कहने लगे—"क्या दिल्लगी करते हो?" बस इस पर उसने कहा—"नहीं महाराज! दिल्लगी नहीं! गंगाजी का मेंढकी गैया करके मान।" इस पर एक बार एक दम सब हँस पड़े, फिर पंडितजी ने उसे बहुत फटकारा और

बहुत समझा बुझा कर कायल किया तब वह गुरुजी के चरणों में पड़ कर क्षमा माँगने लगा।

"हाँ! एक बात याद आ गई! इस प्रत्यक्ष गोदान ने एक पुरानी बात स्मरण करा दी। मैंने सुना है कि यहाँ पहले उभय-मुखी गोदान के नाम से बड़ा अनर्थ होता था। गैया को बच्चा जनते समय रोक कर दुष्ट लोग घंटों तक बच्चों को वैसे ही अधलटका लिए हुए गोदान कराते फिरते थे। कहते हैं कि यह दुष्टता बूँदी के महाराज रामसिंह जी कोई पचास वर्ष पहले बंद करवा गए।"

गौड़बोले के मुख से ये वाक्य निकलते ही पंडित, पंडिता-यिन, कांतानाथ और बूढ़े बुढ़िया का हृदय काँप उठा और वहाँ जो बूढ़े बूढ़े बैठे थे वे हाँ! हाँ!! कह कर महाराज को आशीर्वाद देने लगे। इतने ही में एक यात्री ने कहा—"साहब, अब भी हिंदुस्तान में बड़ा अनर्थ होता है। गाय बछड़ों के पाँच सात पैर, आँख में जीभ आदि विशेष अंग बतला बतला कर कितने ही लोग खूब पैसा लूटते हैं किंतु वास्तव में ये अंग बनावटी होते हैं। बचपन में उनके शरीर में सीं दिए जाते हैं और इस तरह वे बिचारे गूँगे प्राणी आजीवन दुःख पाते हैं। यहाँ वेणी तीर पर भी मौजूद हैं। आज ही मैंने देखे हैं। जिन्हें देखना हो मैं अभी दिखला सकता हूँ।"

उस यात्री के ऐसे मर्मभेदक शब्द सुन कर इन लोगों का हृदय दहल उठा और सब काम छोड़ कर उसे देखने

के लिये पंडित प्रियानाथ उसके साथ हो गए। ऐसा ही एक और भी अनर्थ गंगा जी में मछलियाँ मारने का देखा गया था।



प्रकरण—२२

व्यभिचार में प्रवृत्ति।

"आ बहन! अच्छी तरह तो है? आज बहुत दिनों में दिखलाई दी!"

"तेरी बला से! अच्छी हूँ तो तुझे क्या और बुरी हूँ तो तुझे क्या? तू अपनी करनी में कभी कसर न रखियो। जी तो यही चाहता है कि उमर भर तेरा मुँह न देखूं? पर तेरी विपत्ति सुनकर मन ने नहीं माना। इस लिये झख मार कर आना पड़ा। ले अब सुखी रहना। मैं जाती हूँ।"

"हैं हैं! बहन! जाओ नहीं। तू ही तो मेरी विपत्ति की साथिन और तू ही मुझे ऐसे निराधार छोड़ कर जाती है। मैं तेरे पैरों पड़ती हूँ। न जा। मैं तेरे सिर की सौगंद खाती हूँ। मैंने तेरा कुछ नहीं बिगाड़ा। जो मैंने बिगाडा हो तो अभी मुझ,पर गाज पड़े।"

"अरे निरी बच्ची है! अभी दूध पीती है! तैंने नहीं बिगाड़ा तो क्या आस्मान से आकर राम जी बिगाड़ गया। कई जगह भटकते भटकाते अंत में वहाँ सिर मारा था पर तैंने सत्यानाश कर दिया। मैं तीन वर्ष तक किस की होकर रहूँगी? क्या तेरे हाड़ खा कर जीऊंगी, तिस पर नन्हीं कहती है कि मैंने कुछ नहीं बिगाड़ा!"

"हैं! तीन वर्ष! समझती नहीं! तीन वर्ष? पहेली न बूझ! साफ साफ कह। तीन वर्ष क्या?"

"तेरे बहनोई तीन वर्ष के लिये जेल खाने गए और तेरी ही बदौलत गए। तैने झूठमूठ कह दिया कि उन्होंने ही मुझे लूट लिया। और वह बिचारे उस दिन इधर थे भी नहीं, दिल्ली गए थे। खूब दोस्ती निबाही! ले अब मैं जाती हूँ। तुझे उलहना देने ही आई थी।"

"मैं तेरे सिर की कसम खाकर—अपने प्यारे से प्यारे की सौगंद खाकर कहती हूँ, मैंने उनका नाम नहीं लिया। वह मुझे लूटने में मौजूद जरूर थे पर मैंने उनका नाम नहीं लिया।"

"जब तैने नाम नहीं लिया तब क्या कोई भूत कह गया?"

"भूत नहीं कह गया। पीछे से मुझे मालूम हुआ कि मेरे मुँह से उस बेहोशी की हालत में निकल गया और मेरे बाप ने उसी समय मेरा बयान लिख कर भेज दिया। शायद (अपने पति की ओर इशारा करके) उनके पास भेजा हो उन्होंने पेश कर दिया होगा। उन्होंने फिर मुझ मरी को मारा! तुझे मारा सो मुझे ही मारा। तेरे और मेरे बीच में रंज कराने के लिये। पर मैं अपने ही सिर की कसम खाकर कहती हूँ। मैंने जान बूझ कर नहीं कहा। बेहोशी में मुझ से निकल गया। होश में होती तो अपना माथा कट जाने पर भी नहीं कहती। मैं क्या ऐसी वैसी हूँ जो

अपनी बहन का सुख धूल में मिला दूँ। तेरे लिये मेरा सिर हाजिर है। मेरी प्यारी सखी, मैं सौगंद खाकर कहती हूँ, तेरे पैरों में माथा रख कर कहती हूँ। तू मुझे मार चाहे निवाज। मैंने जान बूझ कर नहीं किया।" इस तरह कहते हुए उसने आनेवाली के पैरों में सिर दे दिया। "हैं हैं! प्राणप्यारी बहन, मुझे तेरा भरोसा है। तू कभी मेरे सामने झूठ नहीं बोलेगी। मैं अपने सुहाग की सौगंद दिला कर कहती हूँ। तू घबड़ा मत। जो रामजी भी मुझ से आकर कहें तो न मानूं कि तैंने किया हो" कहते हुए उसने उसे अपनी छाती से लगा कर अपनी आँचल से उसके आँसू पोंछे। पोंछते पोंछते उसके गोरे गोरे गालों पर हाथ फेर कर— "हाय! हाय! यह फूल सा मुलायम मुँह, यह चाँद सा गोरा चेहरा! मुरझा गया। आग लगे मेरी समझ पर। मैंने नाहक अपनी प्यारी बहन को सताया। माफ करियो बहन! क्षमा करियो।" कह कर उसने उसके दोनों गाल चूम लिए और बदले में उसने उसके चूमे। यों दोनों का झगड़ा मिट कर दोनों फिर एक की एक।

इसके अनंतर सुखदा ने आदि अंत तक जो अपना दुखड़ा रोया उसका बहुत हिस्सा गत प्रकरणों में आ चुका है। मथुरा ने सुन कर जो सहानुभूति दिखलाई उसको लिख कर विस्तार करने की आवश्यकता नहीं। हाँ मथुरा सुखदा का बयान सुन कर मान गई। माने चाहे न माने।

उसने प्रकाशित ऐसा ही कर दिखाया कि "इसमें कुसूर मेरे आदमी का ही है। उस दाढ़ीजार ने जैसा किया वैसा पा भी लिया। गया मुआ तीन वर्ष के लिये जेल काटने! छूट कर आवे तब निपूते का मुँह भी न देखूँ! तुझे और मुझे निगोड़े खसम भी अच्छे नहीं मिले! देखना तेरे बालम जी ने कैसा गजब किया है?"

"हैं हैं! क्या किया? सच सच कहिए। क्या किया? तुझे मेरे सिर की सौगंद है! क्या किया?"

"किया क्या, गजब किया। उधर तुझे घर से निकाल दिया और इधर मेरे उनको कैद कर तेरा सब माल मता पचा बैठे। तू इधर कौड़ी कौड़ी के लिये तरस तरस कर मरती है, दाने दाने के लिये बिलखती है और उधर वह मुआ यात्रा करता फिरता है। तेरे बिना यात्रा! ऐसी यात्रा करना झख मारना है। लुगाई इधर पड़ी पड़ी बिलबिलाती है और उधर वह पूत जी भाभी की गुलामी करते फिरते हैं। गुलामी न करें तो रोटियाँ कहाँ से मिलें।"

"हाँ बहन सच है! मेरा नसीब ही ऐसा है। वहाँ से निकाली जाने पर यहाँ, बाप के यहाँ, आई तो यहाँ भी मुझ पर बिजली पड़ी। मेरा बाप हम मा बेटी को रोती झींकती छोड़ कर न मालूम किधर चला गया। घर में जो कुछ धन दौलत थी उसे नौकर चाकर खा गए, अड़ोसी पड़ोसी लूट ले गए। मेरी मा बिचारी भोली भाली है। दस से ग्यारह गिनना

भी नहीं जानती। बस उसे धोखा दे कर जिसके हाथ पड़ता है वही ले जाता है। हमारा वह निपूता नौकर, बड़ा सच्चा बनता था, पीतल का गहना रख कर दो तीन हजार रुपए ले गया और अब कहते हैं तो आँखें दिखलाता है। रहा सहा चोरी में चला गया। बस वही ढाक के तीन पात। जो मेरा निज का था सो उन्होंने छीन लिया अब फूँक कर चबाने के लिये मुट्ठी भर चने तक नहीं। जहर खाने तक को एक पैसा नहीं रहा। हाय! अब मैं क्या करूँगी? जिंदगी कैसे तै होगी? मुझे बड़ा सोच है। इस फिक्र ही फिक्र में यह देख! मेरा आधा डील रह गया! (छाती में एक घूँसा मार कर रोती हुई) हाय मैं किस से कहूँ? क्या भले घर की बहू बेटी हो कर भीख माँगूंगी? लुगाई के लिये सब से बढ़ कर सहारा उसके लोग का होता है। सो उस निपूते ने भी मुझे निकाल दिया। हाय मैं क्या करूँ?"

"हैं हैं! बहन रोती क्यों है? (उसका हाथ पकड़ कर दूसरा घूँसा रोकती हुई) तुझे रोती देखकर मुझे भी रोना आता है। यह निपूता मेरा स्वभाव ही ऐसा है। दूसरे की दर्द देखकर मेरा कलेजा फटने लगता है। बहन! रोवे मत! जब तक मैं जीऊँगी तुझे दुःख नहीं पाने दूँगी। मैं मजूरी कर के लाऊँगी, हजार बहाने से लाऊँगी पर तेरा पेट भरूँगी। तू घबड़ा नहीं।"

"मेरी प्यारी बहन (गले लगाकर) तेरा ऐसा ही भरोसा

है पर जिसने पाँच पंचों में हाथ पकड़ा था उसकी तो बानगी देख ली ना!"

"अरे बानगी? एक बार नहीं बीस बार देख ली। जिसने अपनी लुगाई को ही निकाल दिया उस मुए का अब नाम भी क्यों लेना। मैं तो कभी की तुझे समझाती हूँ। तू अब तक ही मान जाती तो इतना दुःख काहे को भोगती। तेरी उमर क्या तकलीफ पाने के लिये है। तेरा फूल सा मुखड़ा! हाय तेरी उठती हुई जवानी! देख देख कर मेरा कलेजा टुकड़े टुकड़े हो जाता है! प्यारी बहन! खा पी और मौज कर (उसकी ठोढ़ी पकड़ कर उसका मुँह उठाती हुई उससे आँखें मिलाकर गालों को चूमती हुई "तेरे पर मुझे बहुत दया आती है। यों ही रंज ही रंज में कुत्ते की मौत न मर! प्यारी बहन अब भी मान जा। खा पी और मौज कर!"

"हाँ बहन जैसा उसने मेरे ऊपर जुल्म किया है उसे याद करके तो मेरे मन में यही आता है कि उसे दुनियाँ में मुँह दिखलाने लायक न रक्खूँ। पर करूँ क्या? दोनों कुल लाज जाँयगे। सब बाप दादों के ऊपर थूकेंगे। लोग कहेंगे कि फलाने की बहू, फलाने की बेटी, फलानी, फलाने........."

"हाँ हाँ! रुक क्यों गई? उसका भी नाम ले डाल। वह तेरे ऊपर मरा मिटता है। वह तुझे जी से चाहता है। जब तक तू जीयेगी तुझे गले का हार बनाए रक्खेगा। जो तुझे ज़रा सा भी कभी दुःख हो तो मेरे मुँह पर थूँक देना! मैं

जहाँ तेरा पसीना पड़े वहाँ अपना खून डालने को तैयार हूँ। मेरी लाडली! तू दुःख मत पावे। बस मेरा तो एक बार— नहीं हज़ार बार यही कहना है कि तू मान जा।"

इसके उत्तर में न मालूम "हाँ" कहती अथवा "न" सो अभी नहीं कहा जा सकता। इन दोनों की आज की बात चीत से, ग्यारहवें प्रकरण की छेड़ छाड़ से, हँसी दिल्लगी से अभी तक यह नहीं कहा जा सकता कि सुखदा का सतीत्व बिगड़ गया। उसकी अभी तक की चाल ढाल से इतना अवश्य मालूम होता है कि वह चिड़चिड़े स्वभाव की थी। माता के दुलार ही दुलार में पड़कर एकलौती बेटी माथे चढ़ गई थी। मथुरा की कुसंगति से वह पहले ही कड़ुवी करेली और फिर नीम चढ़ी। एक भले घर की बहू और दूसरे भले घर की बेटी के मन में यदि इतने भी विचार पैदा हुए तो मानो गजब हो गया। यह केवल मंथरा मथुरा, कुटनी मथुरा की कुसंगति का परिणाम है। इसमें दोष कांतानाथ का भी है। वह यदि मथुरा को अपने घर में न आने देता, उसका आवागमन आरंभ होने से पहले ही निश्चय कर लेता तो सुखदा हजार बुरी होने पर भी आज उसके मुँह से ऐसे शब्द न निकलते। परंतु उसके भोले मन को मथुरा की चिकनी चुपड़ी बातों ने भुला दिया। उस दुष्टा ने पहले पति पत्नी में कलह कराकर उसको वहाँ से उचाटा, उसने अपने खसम को सिखा कर सुखदा का सर्वस्व लूट लेना चाहा और यही

अब इस बात का दोष अपने आदमी पर डालकर आप भली बन गई है। सुखदा को बहला फुँसला कर मथुरा ने अपनी मुट्ठी में कर लिया है और वही अब उसे किसी बदमाश के पास ले जाकर उसका काला मुँह करवाना चाहती है। इस दलाली में यदि मिल जाँय तो उस हरामजादी को सौ पचास रुपए मिल भी जाँय। यही "तिरियाचरित्र" है। कुछ भी हो, सुखदा का यदि भगवान ने सतीत्व बचा लिया तो अपने मुँह से आप कहेगी कि "भले घरों में पर पुरुषों का आना तो क्या, समझदार आदमी को चाहिए कि आनेवाली लुगाइयों पर भी खूब नजर रक्खे और ऐसी वैसी को घर की चौखट तक पर पैर न रखने दे, क्योंकि बुरे आदमियों से बुरी औरत हजार दर्जे बुरी हैं।" भगवान उसकी रक्षा करे।

अस्तु! इससे आगे इन दोनों सहेलियों की बात चीत एक दम बंद हो गई। बंद होने का कारण यही हुआ कि दोनों के संभाषण का खूब रंग जम रहा था। जब मथुरा अपनी सखी को ठिकाने लाने को ही थी, अब थोड़ी ही कसर बाकी रही थी उस समय अचानक सुखदा की मा ने इनके बीच में आकर "एं! क्या बात है?" पूछने से रंग में भंग कर दिया। उसकी सूरत देखते ही दोनों सकपका गईं। कहीं मा ने ये बातें सुन न ली हों इस डर से सुखदा के चेहरे का रंग उतर गया और मथुरा भी चुप चाप उठ कर तुरंत चंपत हुई। पति के चले जाने और घर का माल मता लुट

आने से अब उस पर दुःख का पहाड़ टूट पड़ा तब सुखदा की मा पहली सी नहीं रही थी। अब उसने समझ लिया था कि इन सब अनर्थों की जड़ मैं हीं हूँ। बस इस समझ में वह दिन रात रोती पछताती और बार बार अपने आपे को कोसा करती थी। किंतु सुखदा पर अभी जवानी का भूत चढ़ा हुआ था। पति के रूठ जाने, पिता के चले जाने और अपना तथा माता का सब धन लुट जाने पर भी अपने बनाव सिंगार के सिवाय उसे कुछ मतलब नहीं। उसके ख्याल से ससुराल में समस्त दोषों का भार पति पर और जेठानी पर था और पीहर में पिता ही दोषी थे। सारी दुनिया रूठ जाने पर भी एक रामजी न रूठने चाहिएँ और यह राम जी उसके लिये मथुरा के सिवाय कोई नहीं था।

उसकी माता चाहे दुःख के मारे सूख कर काँटा हो गई तो क्या? उसके बार बार सवाल करने पर सुखदा ने अपना मुँह फुला कर उससे कह ही न दिया—"तुझे मेरे दुःख से क्या मतलब? जब से चाचाजी गए हैं तू तो सुख के मारे फूल कर कुप्पा हुई जाती है।" दुलारी बेटी का ऐसा प्यार देख कर माता ने अपना करम ठोक कर रो दिया।

प्रकरण—२३

बच गई।

गत प्रकरण की घटना से पाठक पाठिकाओं को निश्चय हो गया होगा कि माता का दुलार बालकों का जीवन बिगाड़ देता है। सुखदा की माता ने इसका कभी मन मैला न होने पावे इस विचार से अपनी हथेली पर थुँकवाया, उसने लाड़ चाव के लिये बेटी को माथे चढ़ा लिया और सुखदा के ऊधम करने पर, उसके ऐबों पर और उसकी बुराइयों पर जब उसका पिता नाराज होता, मारने लगता अथवा फटकारता, धमकाता तब वह अपनी इकलौती बेटी का पक्ष करके पति से लड़ती। बस इसी का संक्षेप से वह परिणाम हुआ जो गत प्रकरण में लिखा गया है। हुआ वही जो वृंदावनबिहारी ने अपनी गृहिणी से कह दिया था। बेटी की ढिठाई, उसकी बुराई, उसकी जिद्द, उसका बिगाड़, उसका चिड़चिड़ापन और उसका लड़ाकापन देख कर उन्होंने अपनी घरवाली से कह दिया था कि "तू इसे माथे चढ़ाती है तो चढ़ा। तू लाड़ में आकर मेरा कहना नहीं मानती है तो न मान। यह तेरे ही मुँह पर न थूके तो मेरा नाम फेर देना। जो रहेगा सो देखेगा। मुझे क्या! मैं तो कुछ वर्षों का मेहमान हूँ।"

सुखदा की माता का नाम प्रेमदा था किंतु प्रेम उसके पास

होकर नहीं फटकने पाता था। जब से वह घर की मालिकिन बन कर इनके पास घर में आई उसने पति की नस नस में तेल डाल दिया। "बोवै पेड़ बबूर को आम कहाँ ते होय।" इस लोकोक्ति के अनुसार ही उसकी बेटी निकली। माता से भी बेटी बढ़ कर। माता लड़ने झगड़ने पर भी घर से बाहर नहीं निकलती थी। पति को सताने पर भी किसी पर प्रगट नहीं होने देती थी कि "अपने आदमी से मेरी लड़ाई है।" बेटी उससे दो कदम आगे बढ़ निकली। जब बेटे बेटी मा बाप के गुण दोषों की बानगी हैं तब प्रेमदा की प्रशंसा में पन्ने रंगने की आवश्यकता नहीं। इसीलिये बड़े लोग कह गए हैं कि–"माता जैसा पूत और काता जैसा सूत।" मेरी समझ में माता के गुण दोषों का असर पुत्र की अपेक्षा लड़की पर अधिक होता है और इसीका नमूना कर्कशा प्रेमदा की महा कर्कशा सुखदा है।

खैर! जो कुछ होना था सो हो चुका। पति के चले जाने बाद, अपने घर की सारी पूँजी पसारा लुट जाने के अनंतर जब लाड़ली बेटी ने वचनबाणों का प्रहार करके प्रेमदा का हृदय बेध डाला तब उसकी आँखें खुलीं। सचमुच ही कष्ट अंतःकरण का जुल्लाब है। जैसे कुटकी जैसी कड़ुवी दवा लेने में चाहे रोगी को हजार दुःख हो किंतु शरीर के सारे विकार निकल कर उसकी फूल सी देह निकल आती है उसी तरह दुःख पड़ने से आदमी को अकल आती है। बुरे से भी

बुरे स्वभाव के आदमियों को, भ्रष्ट से भी भ्रष्ट मनुष्यों को, नीच से नीच नर नारियों को कष्ट पाने पर अपने किए के लिये पछताते हुए, गिरने के बाद सँभलते हुए देखा गया है। बुढ़ापे में आकर घोर नास्तिक से आस्तिक बन जाते हैं। शराब, जुआ, व्यभिचार, चोरी और इस तरह के दुनिया में जितने ऐब हैं वे कष्ट पाने पर छूट सकते हैं। विपत्ति पड़ने पर अनेकों ने इन्हें छोड़ दिया है। दुनिया के इतिहास में इसके एक दो, नहीं हजारों उदाहरण हैं। बस यही दशा प्रेमदा की हुई। सुखदा के विषय में पति के कहे हुए वचन मानों उसकी आँखों के सामने खड़े होकर उसे ताना देने लगे। अवश्य ही वह अपने कुकर्मों पर अब बहुत पछताई किंतु "अब पछताए होत का जब चिड़ियाँ चुग गईं खेत।"

इस तरह परमेश्वर ने प्रेमदा को सुबुद्धि दी तो दी किंतु अभी सुखदा का मिजाज ठिकाने नहीं आया। माता से कल एक हलकी सी झपट हो जाने के बाद प्रेमदा को रोती देख कर सुखदा को चाहिए था कि वह माता से क्षमा माँग लेती किंतु माफी माँगने के बदले उसने उसे अधिक अधिक चिढ़ाया, उसने माता से बोल चाल बंद कर दी और एक घर में रहने पर भी दोनों अपने अपने मुँह फुलाए रहने लगीं। अवश्य उसका ऐसा बर्ताव देख कर माता यदि कुढ़ती है तो उसे कुढ़ने दीजिए। उसका दिन अपनी अड़ोसिन पड़ोसिनों से हँसने बोलने में, अपनी हमजोलियों से ठट्ठे दिल्लगी करने में,

अपने बनाव सिंगार में और कभी कभी मथुरा से घंटों तक घुसपुस घुसपुस बातें करने में बीतता है। उस दिन की बात चीत पूरी सुन लेने पर भी, माता के आते ही इन दोनों की बातें बंद हो जाने पर भी अब किसी तरह से प्रेमदा को पता लग गया है कि यह हरामजादी मथुरा सुखदा का सत्यानाश करके दोनों कुलों की लाज धूल में मिला देना चाहती है। बस प्रेमदा को जितना दुःख पति परमेश्वर के वियोग का नहीं है, जितना कष्ट धन लुट कर दरिद्री हो जाने का नहीं है, उतना सुखदा की ओर से है, क्योंकि संसार का यह नियम ही है कि आदमी गए हुए की अपेक्षा होनहार से अधिक डरता है। इस कारण कहना पड़ता है कि सुखदा केवल अपनी ससुरालवालों के लिये ही दुखदा न निकली वरन अपनी प्यारी माता के लिये भी, उस जननी के लिये भी, जिसने बेटी का मन मैला न करने के लिये अपनी हथेली पर थुकाया था, दुखदा बन गई।

अब प्रेमदा दिन रात इसी चिंता में है कि किसी न किसी तरह सुखदा को उसकी ससुरालवाले लिवा ले जाँय तो मैं इस घोर विपत्ति के समय भी मेहनत मजदूरी से अपना पेट पाल लूँ और ऐसे अपने घटते दिन पूरे कर लूँ। जब आदमी पर आपदा पर आपदा पड़ती है तब मौत माँगने पर भी कोसों दूर भाग जाती है। इसकी कई बार जहर खाकर मर मिटने की इच्छा होती है किंतु प्रथम तो मरने

का हियाव नहीं और फिर बेटी का ढंग इसका हाथ पकड़ कर रोक देता है कि तेरे मरते ही निरंकुश होकर यह दोनों कुलों की लाज धूल में मिला देगी, क्योंकि जरा सा मेरा काँटा है सो भी निकल जायगा।

जिस मनुष्य पर विपत्ति पड़ती है उसकी रक्षा करने के लिये परमेश्वर उसे धैर्य भी दे देता है। इतना दुःख पड़ने पर भी वह घबड़ाई नहीं है। वह विपत्ति की चक्की में पिस कर चाहे सूखी जाती है किंतु रातों की नींद खोने पर भी वह दिन रात इसी उधेड़ बुन में लगी रहती है कि क्योंकर सुखदा की रक्षा की जाय। वह कई वार सोचती है कि "मथुरा की चोटी पकड़ कर घर से निकाल दूँ, क्योंकि न रहेगा बाँस और न बजैगी बाँसुरी।" किंतु वह अब रोग को असाध्य समझने लगी थी। उसे डर था कि मथुरा को निकालने के उद्योग में कहीं मैं ही कान पकड़ कर घर से न निकाल दी जाऊँ। घर में कुछ न बचने पर भी जो कुछ बचा खुचा था उसे चुरा चुरा कर सुखदा मथुरा को दे दिया करती थी और जो कुछ पाती उसे बेंच खोंच कर दोनों खाने पीने में उड़ा दिया करती थीं। प्रेमदा ने मथुरा को पकड़ कर चोरी के इल-जाम में फँसा देना चाहा परंतु घर की फजीहत होने के डर से उसकी ऐसा काम करने की हिम्मत न पड़ी। उसने सारे समाचार लिखकर दामाद को इस विपत्ति से उद्धार पाने के लिये बुलाना चाहा किंतु वह पढ़ी लिखी नहीं, दूसरे को

अपना भेद देने में बदनामी और कांतानाथ यात्रा में। बस इसलिये वह मन मार कर रह गई।

जो सुख के समय भूल कर भी भगवान को नहीं भजते हैं उनको विपत्ति ईश्वर के चरण कमलों की ओर ढकेल देती है। इस घोर कष्ट के समय, विपत्ति सागर में डूबने की बिरियाँ द्रौपदी की लाज बचानेवाले, गजेंद्र की रक्षा करनेवाले और बड़े बड़े महापापियों का उद्धार करनेवाले परमदयालु परमात्मा की उसे याद आई। याद आते ही उसने—

"हरि जू मेरो मन हठ न तजै। टेक।
निसि दिन नाथ देऊँ सिख बहु विध करत स्वभाव निजै।
ज्यों युवती अनुभवति प्रसव अति दारुण दुख उपजै॥
ह्वै अनुकूल बिसारि शूल शठ पुनि खल पतिहि भजै।
लोलुप भ्रमत गृह पशु ज्यों जहँ तहँ सिर पदत्राण बजै॥
तदपि अधम बिचरत तेहि मारग कबहुँ न मूढ़ लजै।
हौं हार्‌यो करि यत्न विविध विध अतिशय प्रबल अजै॥
तुलसिदास बश होइ तबै जब प्रेरक प्रभु बरजै।"

यह पद गाया। गाते ही इसे बेटी को फटकार देने का साहस हुआ। अब इसने पक्का मनसूबा कर लिया कि "चाहे जान ही क्यों न जाती रहे पर एक बार लड़की को नर्मी गर्मी से समझाना और अब जब कभी मथुरा आवे तो उसे चोटी पकड़ कर निकाल देना। मेरा घर है। मैं घर की मालकिन हूँ। जिस पर मेरा मन न माने उसे भले घर की बहू बेटी के पास

न आने दूँ तो मेरा अधिकार है।" जिस समय प्रेमदा इस तरह का निश्चय कर चुकी थी होनहार से उसी समय मथुरा दुपट्टे में कुछ मिठाई, एक चिट्ठी और दवा की कोई पुड़िया छिपाए वहाँ आ पहुँची। सुखदा के पास पहुँच कर जिस समय उसकी आवभागत होने लगी प्रेमदा धसमसाती हुई दाल भात में मूसलचंद की तरह उनमें जा घुसी। उसकी उमर ढल जाने पर भी विपत्ति पर विपत्ति पड़ने पर भी उसकी पुरानी हड्डियों में अभी तक ताकत थी। उसके एक ही झटके से मिठाई धरती पर बिखर गई और लपका झपकी में पत्र और पुड़िया उसके हाथ आ गई। जब वह पढ़ी लिखी नहीं थी तब क्या जान सकती थी कि चिट्ठी में क्या है किंतु पुड़िया खोल कर देखते ही उसके तन मन में आग लग गई। वह कड़क कर बोली—

"क्यों री राँड ! हरामजादी ! मुझे मारने के लिये यह संखिया लाई है ?. निकल मेरे घर में से। खबरदार फिर कभी मेरी चौखट पर पैर रक्खा तो तेरे पैर काट डालूँगी। राँड मेरी भोली बेटी को बिगाड़ने आई है।" अपनी जननी के मुख से ऐसे बचन सुनते ही लज्जित होने की जगह सुखदा आग बबूला हो गई। उसने पत्र और पुड़िया मा के हाथ में से छीनते हुए "आवेगी हमारे पास। बीच खेत आवेगी। देखूँ तो इसे रोकनेवाली कौन है ?" कह कर खूब ही गालियों की पत्र पुष्पांजलि से अपनी जन्मदात्री जननी का पूजन किया। माता ने क्रोध के आवेश में जब

गालियों का बदला गालियों से चुकाना चाहा तब उसने एक एक की दस दस सुनाईं। वह बोली—

"राँड डायन! तू ही मेरे बच्चे को खा गई। तेरे ही दुःख से मेरा बाप भाग गया और अब तू मुझे भी दुःख दे दे कर मारना चाहती है तो ले मैं खुद ही मरती हूँ। अब मुझे मार कर राजी होना। मैं मर जाऊँगी तब ही तू सुख की नींद सोवेगी।" यह कहते हुए ज्यों ही सुखदा उस पुड़िया को खोल कर अपने मुँह में डालने लगी अकस्मात् किसी आदमी ने अपने वज्र से हाथों से इसे पकड़ा। वह एक हाथ से इसकी गर्दन और दूसरे हाथ से इसके दोनों हाथ पकड़ कर अकड़ते हुए कड़क कर बोला—

"ले राँड! तू मरना चाहती है तो मैं ही तेरा काम तमाम किए देता हूँ।"

"हैं हैं! मरी! मारो मत! मैं तुम्हारी गौ हूँ! हाथ जोड़ती हूँ। हा हा खाती हूँ। हाय रे मैं मरी। अजी मारो मत" कह कह कर, चिल्ला चिल्ला कर जब वह रोने लगी तब उस आने वाले ने उसका गला छोड़ कर और दवा हाथ में से छीन कर अपनी जेब में डालते हुए मथुरा की अपने नालदार बूटों से खूब ही खबर ली। उसकी सहेली की तरह सुखदा को भी जब वह खूब पीट चुका तब उसने मथुरा को चोटी पकड़ कर घसी-टते घसीटते घर की चौखट तक पहुँचाया और उसे सौगंद खिला कर छोड़ा कि अब इस घर में सुखदा के पास कभी

न आऊंगी। इसके बाद उसने सुखदा को भी खूब ही मिट्टी मार से जिससे उसकी जान का खतरा न हो जिससे उसके कहीं खून न निकलने पावे इस तरह खूब ही मारा और इस तरह मारते मारते उसका भूत निकाल कर तब वह बोला—

"अब कहो मा जी मुझको क्या आज्ञा है ? इस हरामजादी के लिये मैं अपनी यात्रा छोड़ कर दौड़ा आया हूँ !"

"लाला ! आज्ञा क्या मेरी विनती यही है कि बुरी और भली जैसी है तुम्हारी है। तुम इसे अपने घर ले जाओ। मैं इसे एक पल भी अब अपने पास न रक्खूँगी। मैं इससे तंग आगई। मैंने उनका (अपने पति के लिये) कहना न मान कर फल पा लिया।"

"मा, मैं तेरी गौ हूँ। तेरे हाहा ! खाती हूँ। मुझे इनके साथ न भेज, नहीं तो यह किसी दिन मेरी जान ले डालेंगे। हाय मरी ! मैं किससे कहूँ ! कोई सुननेवाला भी नहीं !"

"नहीं मैं इसे हरगिज न ले जाऊँगा। जब तक इसके लिये निश्चय न कर लूँ कि यह बिगड़ी नहीं है तब तक इसे घर में घुसने तक न दूँगा।"

इतना कह कर काँतानाथ ने पुड़िया की दवा देखी और पत्र पढ़ा। दोनों को देख कर वे बड़े विचार में पड़ गए। इन दोनों में से किसी ने न जाना कि इनके मन में क्या है ? केवल इतना ही क्यों ? वे इस बात को भी न जान सकीं कि

यह एकाएक यहाँ कैसे आ पहुँचे और इनको किसने खबर दी ?

इसके अनंतर सास दामाद की क्या क्या बातें हुईं सो कहने से कुछ मतलब नहीं और न इस बात से प्रयोजन है कि पति के संन्यास ग्रहण कर लेने बाद क्योंकर प्रेमदा ने अपने पेट का पालन किया। आज पीछे उसने अवश्य ही कभी अपनी बेटी को भूल कर भी याद न किया। हाँ वह अपने जीवनसर्वस्व स्वामी को सताने और उसी के दुःख से उनके चले जाने पर रोती पछताती शर्माती और अपने आपे को कोसती रही। दामाद के बहुत आग्रह करने पर भी उसने अधर्म बतला कर कभी अपनी बेटी दामाद से एक पाई की सहायता ग्रहण न की और सीने पिरोने से अपने घटते दिन पूरे कर लिये। इसके अनंतर न तो प्रेमदा का इस किस्से से कुछ लगाव रहा और न इस लिये उसके विषय में कुछ लिखने की आवश्यकता है।

हाँ! बहुत सोच विचार के बाद पंडित कांतानाथ अपनी सुखदा को लेकर अपने घर आ गए। ऐसी दशा में उन्होंने यात्रा करना उचित न समझ कर बड़े भाई को इस घटना की खबर दे दी और उनके वापिस आने तक वह घर पर ही बने रहे। यद्यपि उन्होंने सुखदा के बहुत चिरौरी करने पर भी उसके हाथ का बनाया हुआ भोजन करने की जगह अपने ही हाथ से चार टिकड़ सेंक कर संतोष किया, यद्यपि उसके

हज़ार कसमें खाने पर भी उसकी बात का भरोसा न करके उसे निर्दोष न समझा और इस लिये एक व्यभिचारिणी स्त्री के लिये प्राचीनों ने घर में रखकर जिस तरह का दंड देने की विधि बतलाई है उसी तरह का उसके साथ बर्ताव किया, किंतु उस दिन उसे पीटने पर पछताए भी वह कम नहीं। कई बार उन्होंने "चमार की देवी की जूतों से पूजा" कहकर संतोष भी किया किंतु मथुरा जैसी कुलटा कुटनी का स्पर्श करने और सुखदा को पीटने की ग्लानि बहुत काल तक उनके हृदय में चक्कर लगाती रही।

अस्तु! वह इस अवसर में चुपके चुपके इस बात की अवश्य थाह लगाते रहे कि सुखदा का दोष किस दर्जे तक पहुँच गया है। निश्चय करके उन्होंने पूरी बातों का पता भी पा लिया किंतु भाई भौजाई की आज्ञा बिना उन्होंने जितना कर दिया उसके सिवाय और कुछ भी न करना चाहा। हाँ उन्होंने इतना कर दिया कि जिस दशा में वह रक्खी गई है उससे अधिक उसे कष्ट न होने पावे। आठ पहर में एक बार बिना लवण मोटा झोटा खाना, मोटा कपड़ा पहनना, चटाई पर सोना और किसी तरह का श्रृंगार न करना-उसकी दिन चर्या। सोने खाने के सिवाय दिन रात राम राम जपना ही उसका काम। एक बार उसने इनके चरणों में सिर देकर कहा भी कि—

"मुझे अब बहुत सजा मिल चुकी। मेरा मन जरूर बिगड़

गया था। उस दिन आप न आते तो शायद मैं आपको दिखाई भी न देती पर मैं कसम खा कर कहती हूँ कि राम जी ने मुझे बचा लिया। अब मारो चाहे निवाजो। तुम्हारी दासी हूँ। तुम्हारे चरणों की रज हूँ। अब मुझ से सहा नहीं जाता। फिर कभी मुझ से कसूर बन आवे तो काट कर मेरे टुकड़े उड़ा देना। तुम्हारी गौ हूँ। इस बार माफ करो।" "भाई भौजाई के आने पर उनकी आज्ञा से जो कुछ होना होगा सो हो जायगा। अभी जो प्रायश्चित बतलाया है सो कर। अपने कुकर्मों के लिये पश्चाताप कर।" के सिवाय कभी एक शब्द भी उन्होंने उससे नहीं कहा और वह भी "अच्छा" कहकर आज्ञा पालने लगी।



मनोरंजन पुस्तकमाला ।

अब तक निम्नलिखित पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं—

(१) आदर्श जीवन—लेखक रामचंद्र शुक्ल ।
(२) आत्मोद्धार—लेखक रामचंद्र वर्म्मा ।
(३) गुरु गोविंदसिंह—लेखक वेणीप्रसाद ।
(४) आदर्श हिंदू १ भाग—लेखक मेहता लज्जाराम शर्म्मा ।
(५) ,, २ ,, ,,
(६) ,, ३ ,, ,,
(७) राणा जंगबहादुर—लेखक जगन्मोहन वर्म्मा ।
(८) भीष्म पितामह—लेखक चतुर्वेदी द्वारकाप्रसाद शर्म्मा ।
(९) जीवन के आनंद—लेखक गणपत जानकीराम दूबे बी. ए.
(१०) भौतिकविज्ञान—लेखक संपूर्णानंद बी. एस-सी., एल. टी.
(११) लालचीन—लेखक वृजनंदन सहाय ।
(१२) कबीरवचनावली—संग्रहकर्त्ता अयोध्यासिंह उपाध्याय ।
(१३) महादेव गोविंद रानडे—लेखक रामनारायण मिश्र बी.ए.
(१४) बुद्धदेव—लेखक जगन्मोहन वर्म्मा ।
(१५) मितव्यय—लेखक रामचंद्र वर्म्मा ।
(१६) सिक्खों का उत्थान और पतन-लेखक नंदकुमारदेव शर्म्मा।
(१७) वीरमणि-लेखक श्यामविहारी मिश्र एम. ए. और शुकदेव विहारी मिश्र बी. ए.

(१८) नेपोलियन बोनापार्ट—लेखक राधामोहन गोकुल जी।
(१९) शासनपद्धति—लेखक प्राणनाथ विद्यालंकार।
(२०) हिंदुस्तान, पहला खंड—लेखक दयाचंद्र गोयलीय बी. ए.।
(२१) ,, दूसरा खंड ,, ,, ,,
(२२) महर्षि सुकरात—लेखक वेणीप्रसाद।
(२३) ज्योतिर्विनोद—लेखक संपूर्णानंद बी. एस-सी., एल-टी.
(२४) आत्मशिक्षण—लेखक श्यामविहारी मिश्र एम. ए.
और शुकदेवविहारी मिश्र बी. ए.।
(२५) सुंदरसार—संग्रहकर्त्ता हरिनारायण पुरोहित बी. ए।
(२६) जर्मनी का विकास, पहला भाग—लेखक सूर्यकुमार वर्म्मा
(२७) ,, ,, दूसरा भाग ,, ,,
(२८) कृषिकौमुदी—लेखक दुर्गाप्रसाद सिंह एल. ए-जी.
(२९) कर्त्तव्य शास्त्र—लेखक गुलाबराय एम. ए., एल-एल. बी.
(३०) मुसलमानी राज्य का इतिहास पहला भाग—लेखक
मन्नन द्विवेदी गजपुरी बी. ए.।
(३१) ,, ,, दूसरा भाग ,,
(३२) महाराज रणजीत सिंह—लेखक वेणी प्रसाद।
(३३) विश्वप्रपंच पहला भाग—लेखक रामचंद्र शुक्ल।
(३४) ,, दूसरा भाग ,,
(३५) अहिल्याबाई—लेखक गोविंदराम केशवराम जोशी।

शंकरदत्त वाजपेई द्वारा भारतजीवन प्रेस, बनारस में मुद्रित।